52

Partial Sri Svadhyaya

स्वास्थ्य-रक्षा

[लेखक— श्री स्वामी रघुवीरदासजी ब्रह्मचारी]

[विद्वान् लेखकने जो प्रक्रिया लिखी है इसके सतत अभ्याससे सर्वसाधारण जनताके स्वास्थ्यमें बहुत लाभ हो सकता है। प्रक्रिया शत-प्रतिशत ठीक है, किन्तु इस क्रियाको पहले किसी अनुभवी गुरुके सम्मुख कर लिया जाय तो विशेष अच्छा होगा। क्योंकि केवल लेखके आधार पर कोई बात ठीक समझमें न आनेसे आरम्भमें यदि कोई त्रुटि रह जाय तो लाभकी अपेक्षया हानिकी सम्भावना है, इस कारण आरम्भमें बड़ी सावधानी की आवश्यकता है —सम्पादक]

यह बतानेकी आवश्यकता नहीं कि सांसारिक जीवन-यापन करनेके लिये स्वास्थ्यका कितना प्रयोजन है। स्वास्थ्य ही जीवन है। अर्थात् आधि-व्याधिग्रस्त होकर जो मनुष्य जीवन-यापन करते हैं, वे संसारके सुखोंसे वञ्चित रहकर व्यर्थका जीवन ही व्यतीत करते हैं। क्योंकि स्वस्थ मनुष्य ही मानवोचित अपने कर्तव्यका पालन कर सकता है। इसके विपरीत रुग्ण व्यक्तिके लिये सांसारिक सुख तो क्या उसे अपना शरीर भी भारी हो जाता है, ऐसी दशामें स्वास्थ्य किसको प्रिय न होगा ?

एक तो भारतकी दरिद्रताके कारण पुष्टिकर खाद्य न पानेसे मनुष्य योंही दिनोंदिन निर्बल तथा स्वास्थ्यहीन होते जाते हैं। दूसरे लोग अपने नित्य नैमित्तिक कार्योंकी अवहेलना करके भी अपनेको अत्यन्त निर्बल बनाते हैं। किन्तु अब आप ही सोचें कि आजकल इसकी क्या दशा है ? एक दिन वह समय था, जब हमारे लड़कोंको शिक्षित बनानेके साथ २ व्यायाम आसन आदि शरीर-स्वास्थ्यप्रद विद्याकी शिक्षा दी जाती थी। उस समयके विद्यार्थी आसन आदि योगकी क्रियाओंमें इतने सुदक्ष होते थे, कि रुग्णता उनको छू तक न जाती थी। आज हमारे विद्यार्थियोंमें उन योग क्रियाओंकी छाया तक नहीं दिखलाई देती। हर्ष है कि देशके मनीषियोंका ध्यान इधर आकृष्ट होने लगा है। फलतः स्थान-स्थान पर स्कूल आदि स्थानोंमें व्यायामकी शिक्षा दी जाने लगी है। इस प्रकारकी जो शिक्षा दी जाती है वह पर्याप्त कदापि नहीं कही जा सकती। अच्छा होता, यदि लड़कोंके माता पिता शिक्षा गुरुओं पर निर्भर न रहकर स्वयं आसन प्रक्रिया आदि योग क्रियाकी शिक्षा देने लगते। ये क्रियायें समय तो अवश्य लेती हैं किन्तु बड़ी ही सरल है। इस क्रियाके करनेमें किसीको कठिनाई नहीं मालूम होती है। मैं नीचे कुछ आसन क्रियाका दिग्दर्शन कराता हूँ।

(१) लड़कोंको सवेरे स्नानादिक करके कुछ डण्ड-बैठक कर लेना बहुत आवश्यक है। इसकी संख्या क्रमसे १५-२० होनी चाहिये। सर्वप्रथम इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि आसन जहाँ किया जाय वह स्थान स्वच्छ सुन्दर हो, क्योंकि दूषित स्थानकी वायुभी दूषित हो जाती है फलतः सांस लेनेमें जो दूषित वायु भीतर जायगी वह लाभकी अपेक्षा हानि ही करेगी।

(२) सबसे पहले जिस ओरसे शुद्ध वायु आती हो उसी ओर मुँह सीधा करके खड़े हो जाइये। शरीरका कोई भाग संकुचित न होने पावे। अपितु शरीरके अंगोंको धीरे धीरे कड़ा कर लेना चाहिये। इसके अनन्तर दोनों हाथ कड़े करके पुट्ठे (जांघ) पर सटा देना उचित है। इसके उपरान्त नाभि-देशको जितना भीतर ले जाया जाय ले जाना चाहिये, साथ ही मुँहको काक-चंचू की भांति बनाकर (अर्थात् मुँहको इस तरह सकोड़ लेना चाहिये जिससे कौएकी चोंचके बराबर हो जाये) नीचे ऊपरकी दांतोंसे जिह्वाके अग्र भागको दबाकर सांस लें जहां तक ले सके। जब थक जांय, तो थोड़ी देर तक सांस लेना बन्द कर दें। इसके पश्चात् एकाएक मुंह फैल

जोरसे हवा मुंहसे छोड़ें। कमसे कम इस प्रकारकी क्रिया नित्य चार-पांच बार करनी चाहिये।

(३) ऊपरकी क्रिया कर लेनेके उपरान्त फिर दूसरी क्रिया करना चाहिये। यह इस प्रकार करना उचित है। पहली क्रियामें जिह्वाके अग्रभागको जिस प्रकार दांतोंसे दबाते हैं दबा लीजिये, फिर सांस लीजिये, सांस लेते समय एक प्रकारका जल मुंहमें सञ्चय होता है। उस जलको पी जाइये। किन्तु इस बातका पूरा ध्यान रहना चाहिये कि यह क्रिया करते समय मुँह दुर्गन्धित न रहे। यह क्रिया यदि आप खड़े होकर न करना चाहें तो बैठकर ही कर सकते हैं। परन्तु स्थान कोई बाग या किसी जलाशयका किनारा हो तो बहुत ही उत्तम है। आप छत पर भी बैठकर शुद्ध वायुमें कर सकते हैं। किन्तु ऐसे खेतके किनारे न करें जिस खेतमें हरी फसल खड़ी हो। क्योंकि इस फसलसे एक प्रकारकी गैस निकलती है, जिससे इस क्रियामें हानि पहुँचती है।

इन दो क्रियाओंमें उपर्युक्त क्रियासे फेफड़ा तथा पेटका विकार नष्ट होगा तथा जीवनी शक्ति-बढ़ेगी। फिर स्मरण शक्तिकी वृद्धि और मस्तिष्कमें सरसता आती है। आपको ज्ञात होना चाहिए कि जिह्वाके अग्रभागमें अमृतका बास है। दांतोंके दबानेसे जिह्वासे जो जल मुंहमें आता है, वह जल जल नहीं, अमृत है। अतः अब आपको बताना न होगा कि अमृत पेटमें जाकर क्या काम कर सकता है। ये क्रियाएँ स्त्री-पुरुष दोनोंके लिये समान गुणकारिणी हैं। इस क्रियाके करते रहने पर रोगी होनेकी आशङ्का एक प्रकार मिट-सी जाती है तथा स्वास्थ्य दिनोंदिन सुधरता जायगा। लगातार तीन महीने तक आप इन क्रियाओं को करें तो आपका स्वास्थ्य बहुत कुछ सुधर जायगा।

——

होलिकोत्सव

[कवयिता—श्री सिद्धगोपालजी]

ऋतुराज वसन्त विराज रहा,
मनभावन है छवि छाज रहा।
बन बागनमें कुसुमावलिकी,
सुखदा-सुषमा वह साज रहा॥

यव गेहूं चना सरसों अलसी,
सब ही पक आज अनाज रहा।
यह देख मनोहर दृश्य सभी,
अति हर्षित होय समाज रहा॥

उपलक्ष्य इसे करके जगमें
शुभ होलक उत्सव हैं करते।
अधपक्व यवाहुति दे करके,
सब व्योम सुगन्धसे हैं भरते।

सब सज्जन-वृन्द अतः जगमें,
नव-सस्य-सुयज्ञ इसे कहते।
कुल वैर-विसार सनेह सने,
हुलसे सब आपस में मिलते॥

वर पान इलायचि भेंट करें,
निज मित्र समादर हैं करते।
हृदयङ्गम गायन वादनसे,
मुदसे सब हैं मनको हरते।

(६३ पृष्ठका शेष)

ता० ३ अप्रैल रात्रि ८ बजेसे (३॥ दिनमें)—मन्दी जा रही है तेजी आ रही है। आगे आंकड़े अच्छे रूपमें बढ़ते प्रतीत होते हैं। व्यापार समयका टोन देखकर करियेगा।

ता० ७ अप्रैल प्रातः ६ बजेसे (३॥ दिनमें)—बाजारमें तेजी-मन्दी दोनों चले। यदि सौदा खड़ा है तो नया वायदामें बदला करलें, क्योंकि आगे तेजी की आशा है।

ता० १० अप्रैल सायंकाल ६ बजेसे (३॥ दिनमें)—बाजारमें घटाबढ़ी चलकर रुख तेजी की ओर अधिक रहेगा।

बसन्तोत्सव कैसे मनाया जाय ?

[लेखक—श्रीपं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी भू० पू० सम्पादक 'विशाल-भारत']

[यह लेख फरवरी सन् १९३१ में लिखा गया था। इसमें हिन्दी साहित्य-सेवियोंसे जो प्रार्थना की गई है उसे दुहरानेकी आवश्यकता है। यदि भिन्न भिन्न जनपद इस सांस्कृतिक योजनाको अपना लें तो आगामी वसन्त हमारे लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है। दुर्भाग्यकी बात है कि इस लेखमें वर्णित अनेक वयोवृद्ध साहित्यिक विद्वान् अब इस संसारमें नहीं हैं। —सम्पादक]

जब किसी जातिमें क्रियात्मक कल्पना-शक्ति (Creative imagination) का अभाव हो जाता है, तो वह अपने प्राचीन गौरवका गान करने और पुराने रीति (प्रथाओं) का निर्जीव नाट्य करनेमें ही अपने जीवनको सार्थक समझने लगती है। बाह्य आडम्बरोंकी रक्षाको वह अधिक आवश्यक समझती है और आन्तरिक भावनाको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखती है। यदि इस कथनके लिए दृष्टान्त चाहिए तो हमारे उत्सवोंको देख लीजिए। इन उत्सवोंके मनानेकी विधिके भद्देपनको देखकर यही प्रतीत होता है कि हम लोग सचमुच 'साहित्य-सङ्गीत-कला-विहीन' हो गए हैं। हम लोगोंमें कुछ-न-कुछ श्रद्धा अवश्य है, पर हम उसे उचित-रूपसे प्रकट नहीं कर सकते। देशके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें वसन्तोत्सव मनाए जाते हैं, और थोड़ा-बहुत पैसा भी व्यय किया जाता है। यदि इसे ढङ्गके साथ मनाया जाय, तो संस्कृतिकी दृष्टिसे यह उत्सव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन सकता है। आवश्यकता इस बातकी है कि इस उत्सवके मनानेकी विधिमें साहित्य सङ्गीत और कलाका यथोचित समावेश किया जाय। इसी उद्देश्यसे यहाँ एक कार्य-क्रम उपस्थित किया जाता है।

सबसे पहली बात तो यह है कि वसन्तोत्सव नगरके कोलाहलसे दूर किसी उपवनमें मनाया जाय। नाना प्रकारके ऊधमोंके बीच नगरकी धुआँधार गन्दी गलियोंमें वसन्तोत्सव मनाना वसन्तका उपहास उड़ाना और अपनेको हास्यास्पद बनाना है। यदि वसन्त मनाना है, तो किसी उपवनमें चलिए, जहाँ आम्रमञ्जरी आपको निमन्त्रण दे रही है, वृक्षोंकी नवीन कोंपल नवजीवनका सन्देश सुना रही है और सुन्दर सुगन्धित पुष्प आपके हृदयको प्रफुल्लित करनेकी बाट जोह रहे हैं। अभी उस दिन हम एक जापानी पत्र (ओसाका असाही) का अंग्रेजी विशेषाङ्क देख रहे थे। उसमें जापानियोंके प्राकृतिक सौन्दर्य-प्रेमका वृत्तान्त पढ़कर आश्चर्य हुआ। सुनिये, जापानी लोग वसन्तमें क्या करते हैं—

"The viewing of cherry blossoms in spring makes an annual event in the life of Japanese. The first cherry viewing party ever recorded was in the third year of Konin (812), when the emperor Saga reigned. Afterwards it became popular with all classes of people. Now-a-days the appreciation and protection of cherry blossoms is in large measure due to the work of Cherry Tree Society, first sponsored by Marquis Yorimichi-Tokugawa in 1912. The members of this society are engaged in the study of the cherry from the scientific and literary points of view and publish the results of their study in an organ called 'The Cherry'. As is widely known, the cherry tree and its blossoms have very often furnished the inspiration for lite-

rature and the fine arts in this country."

अर्थात्—'जब चेरी-पुष्पोंके खिलनेका समय आता है; तो वसन्तऋतुमें उन्हें देखनेके लिए सहस्रों ही आदमी जाया करते हैं। यह वसन्त-यात्रा जापानी जीवनकी एक उल्लेख योग्य वार्षिक घटना हुआ करती है। जहाँ तक इतिहाससे पता चलता है, पहले पहल सन् ८१२ में सम्राट सगके राज्यमें इस यात्राका प्रारम्भ हुआ था। इसके बाद इस प्रकारकी यात्राएँ सम्पूर्ण जनतामें लोकप्रिय होगईं। सन् १९१२ में मार्क्विस योरीमीची तोकूगावाके प्रोत्साहनसे जापान में एक 'चेरी तरु समिति' (Cherry Tree Society) की स्थापना हुई थी। इस समितिके सदस्य वैज्ञानिक तथा साहित्यिक दृष्टिसे चेरी-वृक्ष तथा चेरी-पुष्पका अध्ययन करते हैं और अपने अध्ययन के परिणाम 'चेरी' नामक पत्रमें प्रकाशित करते हैं। यह बात प्रसिद्ध ही है कि चेरी-वृक्ष तथा चेरी-पुष्पोंसे जापानके साहित्य और ललित कलाओंको बहुत कुछ प्रेरणा मिली है।"

क्या ही अच्छा हो, यदि हम लोग भी अपने नवयुवकोंके हृदयमें इसी प्रकारका सौन्दर्य-प्रेम उत्पन्न करें।

वसन्तोत्सवका कार्यक्रम

वसन्तोत्सवके कार्यक्रमको हम कई विभागमें बांट सकते हैं—

(१) वसन्त-पञ्चमीके दिन किसी उपवनमें कवि-सम्मेलन, सङ्गीत तथा खेल-कूद इत्यादि द्वारा मनोरञ्जन।

(२) साहित्यिक यात्रा—किसी प्राचीन साहित्य-सेवीकी जन्मभूमि अथवा अन्य किसी विशेष स्थान की यात्रा।

(३) अधिकारी विद्वानों द्वारा भिन्न-भिन्न विषयों पर व्याख्यान—उदाहरणार्थ, कला, सङ्गीत, इतिहास इत्यादिके विषयमें भाषण।

वसन्तोत्सवको हम लोग इतना उपयोगी और मनोरञ्जक बना सकते हैं कि इसके द्वारा हिन्दी-भाषा-भाषी जनताकी रुचिका बहुत कुछ विकाश हो सकता है। यदि इस कार्यको संगठित रूपसे किया जाय तो सम्पूर्ण हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तोंमें अद्भुत जाग्रति उत्पन्न हो सकती है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन जैसी अखिल भारतीय संस्था यदि चाहे, तो वसन्त—व्याख्यान-मालाको अत्यन्त उपयोगी बना सकती है। भिन्न-भिन्न स्थानोंमें हिन्दी के धुरन्धर विद्वानोंके भाषणोंका प्रबन्ध कराना असम्भव कार्य न होगा। इतिहासके विषयको ही लीजिए। यदि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन चाहे, तो वह पूज्य पं० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा, श्री काशीप्रसाद जायसवाल, डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी, डाक्टर ईश्वरीप्रसाद, डाक्टर बेनीप्रसाद इत्यादिके भाषणोंका प्रबन्ध आगरा, प्रयाग, काशी, पटना, कलकत्ता इत्यादि स्थानोंमें करा सकता है। इसी प्रकार कला-विषयक भाषण भी श्रीमुकुन्दीलाल बैरिस्टर, श्री रायकृष्णदास, श्रीपूरणचन्द नाहर तथा श्रीअर्द्धेन्दु-कुमार गाङ्गुली इत्यादि द्वारा कराए जा सकते हैं। प्राचीन कालके विशाल भारत (Greater India) अर्थात् यव-द्वीप, सुमात्रा, कम्बोज, मलय-द्वीप इत्यादि की संस्कृतिके विषयमें डाक्टर कालीदास नाग तथा डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जीके भाषणोंसे हिन्दी-जनताका बहुत-कुछ मनोरञ्जन तथा ज्ञानवर्द्धन हो सकता है। बङ्गला, गुजराती, मराठी, तैमिल, तेलगू, कनाड़ी इत्यादि भाषाओंके साहित्यके विषयमें भी भाषण दिलाना लाभदायक होगा। जब हमारी भाषाको राष्ट्र-भाषाका पद मिल रहा है, तो हमारा कर्तव्य है कि अन्य प्रान्तीय भाषाओंमें जो कुछ अच्छा है, उसे ग्रहण करनेका प्रयत्न करें और अपनी सेवाओं द्वारा उनकी भी वृद्धिमें सहायक हों। हमने सुना है कि वसन्त-व्याख्यान-मालाका प्रबन्ध महाराष्ट्रमें कितने ही वर्षोंसे किया जाता है। उसे ग्रहणकर हम और भी व्यापक रूप दे सकते हैं। कवीन्द्र रवीन्द्रके शान्ति-निकेतनमें वर्षोत्सव, शरदोत्सव और वसन्तोत्सव मनाये जाते हैं। क्यों न हम

लोग एक बार चलकर इन उत्सवोंको देखें, और उनमें जो कुछ अच्छा हो, उसे ग्रहण करनेका प्रयत्न करें।

अमेरिकामें साधारण जनताके लाभार्थ चाटाकुआ शिक्षा-पद्धति प्रचलित है। वह पत्र-व्यवहार द्वारा, स्थान-स्थान पर ग्रीष्म-विद्यालय खोलकर तथा भ्रमणशील समितियोंके द्वारा अमेरिकामें शिक्षा-प्रचार करती है। प्रसङ्गवश हम उसकी भ्रमणशील समितियोंका संक्षिप्त वृत्तान्त यहाँ देना उचित समझते हैं।

जनतामें शिक्षा-प्रचारके अतिरिक्त चाटाकुआ-सप्ताहकी प्रथा भी बहुत लाभदायक सिद्ध हुई है। सबसे प्रथम वर्षके दस दिनों तक होने वाले सम्मेलन की प्रथाको अधिक उपयोगी और अधिक लाभप्रद बनानेके लिए इस संस्थाके सञ्चालकोंने चाटाकुआ भ्रमणशील समितियों (Chatanqua circuits) की स्थापना की। इस समय ऐसी समितियोंकी संख्या ८७०० तक पहुँच गई है। यह समितियाँ संयुक्त-राष्ट्र अमेरिकाके भिन्न-भिन्न नगरोंमें खोली गई हैं। इन समितियोंने जनतामें शिक्षा फैलानेमें बहुत बड़ा भाग लिया है। प्रत्येक समिति वर्षमें आसपासके छः नगरोंमें एक ही तारीखमें चाटाकुआ-सप्ताहका समारोह करती हैं। इस समारोहके लिए प्रत्येक नगर में एक विशाल मण्डप बनाया जाता है, जिसे बहुत अच्छी प्रकार सुसज्जित किया जाता है। प्रतिदिनकी कार्यवाही विशेष मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद बनाई जाती है। सवेरे कई विषयों पर विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान कराये जाते हैं। दोपहरके बाद सङ्गीत और वाद्यादि तथा रातको नाटक, प्रहसन, भिन्न-भिन्न खेल अथवा बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों और प्रसिद्ध पुरुषोंके विविध विषयोंपर उपयोगी भाषण होते हैं। एक वक्ता एक नगरमें पहले दिन भाषण देकर दूसरे नगरमें चला जाता है, और वहाँ भाषण देकर तीसरे नगरमें चला जाता है। इस प्रकार कुछ कार्यकर्ता ही छः नगरोंमें सप्ताह-समारोह मनानेके लिए पर्याप्त होते हैं।

चाटाकुआमें व्याख्यान देनेके लिए अपने-अपने विषयके प्रामाणिक विद्वानों, योग्य वक्ताओं और उत्तम प्रचारकोंको निमन्त्रित किया जाता है। केवल अमेरिकाके ही नहीं यूरोपके विद्वान् भी यहाँ व्याख्यान देनेके लिए बुलाए जाते हैं। बड़े-बड़े विद्वान् यहाँ व्याख्यान देनेमें अपना सम्मान समझते हैं। केवल उत्तम वक्ता और योग्य विद्वान् ही नहीं उत्तम नाटक और अभिनय, प्रहसन आदिमें अत्यन्त प्रवीण पुरुषोंको भी निमन्त्रित किया जाता है। वहाँ एक पुरुष एक सत्र (सेशन) में ऐसे अच्छे-से-अच्छे अभिनय, गान और भिन्न-भिन्न वाद्य सुन सकता है, जिनकी उसने पहले कभी कल्पना भी न की होगी। सुप्रसिद्ध पहलवान आकर वहाँ लोगोंको विविध प्रकारके व्यायाम आदि भी सिखाते हैं।

यह एक ऐसी संस्था है—ऐसा शिक्षण-क्रम है—जिससे जनताकी बौद्धिक और नैतिक उन्नति की जा सकती है। प्रसिद्ध अमेरिकन रुजवेल्टने इस अपूर्व शिक्षण-पद्धतिके लिए कहा था कि अमेरिकामें सबसे अधिक अमेरिकन वस्तु यही है। यह एक व्यावहारिक (प्रैक्टीकल) पद्धति है। शिक्षा-जगत्में इसने क्रान्ति कर दी है। आज अमेरिका ही नहीं, यूरोपमें भी इस पद्धतिका पर्याप्त अनुकरण हुआ है।"

यदि ध्यान-पूर्वक देखा जाय, तो हिन्दी-भाषा-भाषियोंमें ऐसे विद्वान् विद्यमान हैं, जिनके कारण हम प्रान्तीय भाषा भाषियोंके सम्मुख अपना मस्तक ऊँचा कर सकते हैं। बस, कमी हमारे यहां है तो यही कि शिक्षा और संस्कृतिके दृष्टिकोणसे हिन्दी वाले अन्य भाषा-भाषियोंसे बहुत पीछे हैं। इस कमीको दूर करनेके लिए ही उपर्युक्त कार्यक्रम रखा गया है। वाद-विवादके बाद इसमें बहुत-कुछ घटा-बढ़ी हो सकती है। सम्मेलनके आगामी अधिवेशनमें यह कार्यक्रम हिन्दी-जनताके सम्मुख रखा जायगा, और हमें पूर्ण विश्वास है कि सम्मेलन इसे स्वीकार कर लेगा। पर हमें उसकी स्वीकृति या अस्वीकृतिकी विशेष चिन्ता नहीं है, क्योंकि हम धैर्य-पूर्वक प्रतीक्षा कर सकते हैं और जब तक यह कार्यक्रम सम्मेलन द्वारा

स्वीकृत होकर कार्य-रूपमें परिणत न होने लगे, तब तक निरन्तर आन्दोलन करते रहेंगे। नागरी-प्रचारिणी-सभा काशी, मध्यभारत हिन्दी-साहित्य-समिति इन्दौर, नागरी-प्रचारिणी-सभा आगरा इत्यादि संस्थाएँ इस दिशामें बहुत-कुछ कार्य कर सकती हैं। यदि सम्मेलन इस कार्यको न भी अपनावे, तब भी ना० प्र० सभा काशी इत्यादिको इसे अवश्य अपनाना चाहिए। हमारा दृढ़ विश्वास है कि जो संस्था इसको अपनावेगी, वह जनताका हित करनेके साथ-साथ अपना प्रभाव भी व्यापक बना सकेगी।

सन् १९३५ में वसन्तोत्सव कैसे मनाया जायगा, इसके स्वप्न हम अभीसे देख रहे हैं। वसन्त-पञ्चमी आने वाली है। सम्मेलनने अपनी सम्बद्ध संस्थाओं को आदेश दे दिया है कि वसन्तोत्सव एक निश्चित कार्यक्रमके अनुसार मनाया जाय। आगरेकी नागरी-प्रचारिणी-सभाने सूरदासके निवास स्थान रुनकुता (रुक्मिणी-क्षेत्र) तथा स्वर्गीय सत्यनारायणके निवास-स्थान धांधूपुराकी यात्राओंका निश्चय कर लिया है साप्ताहिक व्याख्यानोंका प्रबन्ध हो गया है। श्रीमयाशङ्कर याज्ञिक व्रजभाषाके प्राचीन कवियोंके विषयमें अपने अन्वेषणका वृत्तान्त सुनावेंगे। लल्लूलालजी, राजा लक्ष्मणसिंह, श्रीधर पाठक, सत्यनारायण, कविवर नज़ीर इत्यादिके विषयमें निबन्धोंका पाठ होगा। कवि-सम्मेलन तथा मुशायरेका भी प्रबन्ध किया गया है। उधर व्रज-मण्डलवाले भला कब किसीसे पीछे रह सकते हैं। वर्तमान कालमें व्रज-भाषाके सर्वश्रेष्ठ कवि जगन्नाथदास 'रत्नाकर' को उन्होंने अपने अधिवेशनका सभापति निर्वाचित किया है। अष्टछापके कवियोंके विषयमें निबन्धोंका पाठ हो रहा है। श्रीजवाहरलाल चतुर्वेदी द्वारा संग्रहीत नन्ददास ग्रन्थावलीकी एक हज़ार प्रतियां हाथों-हाथ बिक गईं। कविवर रत्नाकरजीके आग्रहसे पं० पद्मसिंहको भी बिहारीलालके विषयमें अपना निबन्ध पढ़ना पड़ा। इसके बाद कविवर सोमनाथके विषयमें याज्ञिक बन्धुओंके निबन्धका पाठ हुआ। प्राचीन व्रजभाषा-साहित्यके प्रकाशनके विषयमें एक व्यावहारिक योजना बनाई गई।

श्रीकालिदासजी कपूर लखनऊसे अपने विद्यार्थियोंको लेकर मलूकदासके जन्मस्थानकी यात्राके लिए निकल पड़े हैं। गोरखपुरके साहित्य-सेवियोंने तो श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारके प्रबन्धमें भगवान् बुद्धके जन्मस्थान, निर्वाणस्थान तथा कबीरके जन्मस्थानकी यात्राओंका प्रबन्ध कर लिया है। मध्यभारत हिन्दी-साहित्यके उत्साही मन्त्री रा० ब० डा० सरजूप्रसादने इस साहित्यिक तथा सांस्कृतिक कार्यमें अपनी सारी शक्ति लगा दी है। श्रीकृष्णबलदेव वर्मा भला बुन्देलखण्डको क्यों पिछड़ने देंगे? श्रीरायकृष्णदासके उत्साहसे तथा कला-भवनके कारण नागरी-प्रचारिणी-सभाका कार्यक्रम सबसे अधिक मनोरञ्जक रहा और कलकत्तेवालोंने तो कमाल कर दिया। शान्ति-निकेतन की यात्रा की गई। महाबोधि सोसाइटीके सुरम्य भवनमें प्रति सप्ताह व्याख्यानोंका प्रबन्ध किया गया। कला, साहित्य, इतिहास, इत्यादि विषयों पर सचित्र व्याख्यान हुए। भिन्न-भिन्न पत्रोंने अपने विशेषाङ्क निकाले, 'विशाल-भारत' का कला-अङ्क बड़ी सजधज के साथ प्रकाशित हुआ। देशके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें इसी प्रकार बड़ी शानके साथ वसन्तोत्सव मनाये गए और उनके वृत्तान्त समाचार-पत्रोंमें छपे। लोग कहने लगे कि भाई, वसन्तोत्सव तो अबकी बार मनाया गया है।

सम्भव है कि हमारे निराशावादी आलोचकगण कहें कि इस प्रकारके व्यर्थ-स्वप्न देखनेसे क्या लाभ? अभीसे १९३५ की वसन्त-चर्चा क्यों चला रहे हो? हमारा उनसे यही नम्र निवेदन है कि यदि हमारे यहाँ दो-चार कल्पनाशील और परिश्रमी कार्यकर्ता हों और वे हिन्दी-भाषा-भाषी जनताकी सांस्कृतिक जाग्रतिको अपने जीवनका ध्येय बना लें, तो बजाय सन् १९३५ के सन् १९३२ में ही उपर्युक्त स्वप्नका अधिकांश सत्य सिद्ध हो सकता है।

कलकत्तेमें भागीरथीके निकट एक उपवनके बीच में बैठे हुए यह दिवा स्वप्न देख रहा हूँ। वसन्तऋतु आगई है। नाना प्रकारके पुष्प खिले हुए हैं। आम बौरा गए हैं, कोयल-कीर गान कर रहे हैं। शीतल-

विवाहकी कुछ चित्र-विचित्र प्रथाएं

[लेखक—विद्याभूषण श्री पं० मोहन शर्मा, विशारद, पूर्व सम्पादक 'मोहिनी']

विवाह बन्धनमें देशगत भेदाभेद और विवाह सम्बन्धी नाना मनोरञ्जक तथा अद्भुत प्रथाओंकी आलोचना करते हुए मानसशास्त्रके विद्वान् अद्यावधि जिस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं, उसमें उनका यह कथन गवेषणा और बुद्धिसे खाली नहीं जान पड़ता कि जन्म, मृत्यु और विवाह यही मानव जीवनकी तीन मुख्य घटनाएं हैं। और यह तीनों ही जीवन परिधि के नाना दुःख, सुख और आशा निराशाओंके बीच केन्द्रित हैं। इनमेंसे जन्म और मृत्युको अदृष्टाधीन बताया जाता है, पर विवाह व्यापार यथार्थमें दैवाधीन न होकर मनुष्याधीन ही हैं। इसकी भलाई बुराई या बनाव बिगाड़का सर्वतोभावेन मनुष्य ही उत्तरदायी होता है। वह चाहे तो विवाहको स्वर्गीय सुषमासे मण्डित कर स्नेह सलिलमें अजस्र भावसे अवगाहन करता रहे और चाहे तो उसे यावतीय दुःख और मनस्तापका केन्द्र बनाकर रौरवको भीषण यातनायें भोगा करे। विवाहसंस्कार जीवन और मृत्यु के बीचमें झूलता हुआ वह झूला है जिसमें बैठकर मनुष्य घरकी दुनियाँको अपने ही प्रयत्नसे स्वर्ग और नरक दोनों बना सकता है। विवाहसंस्कारकी आड़में हमारे घरेलू जीवन और प्राणोंमें जो परिवर्त्तन घटित होते हैं; उनकी ओर हम स्त्री-पुरुष जिस प्रकार आकुलित प्राणोंसे उन्मत्त आवेगमें भागदौड़ कररहे हैं—वह प्रत्यक्ष ही है। अतः मानना पड़ेगा कि गृहस्थ-जीवनमें इससे अधिक व्यापक दूसरा संस्कार नहीं है।

विवाह संस्कारकी अधिकांश प्रथाओंका जन्म पुरुषकी एक खास भावनाको लेकर हुआ है। और उसकी यह भावना स्त्री जातिके पक्षमें रुचिकर और मान्य देखी गई है। स्मरणातीत कालसे ही स्त्रीको रहस्यमयी गिना जारहा है और उसके इस रहस्यका पुरुष आज तक भी उद्घाटन नहीं कर सका। स्वर्गीय कवीन्द्र रवीन्द्रने अपने एक प्रसिद्ध गीतमें नारीतत्त्व की विवेचना करते हुए गाया है कि "हे रमणी रत्न! तू अर्द्धसत्य है और अर्द्धस्वप्न है!" कहना नहीं होगा कि स्त्री जो अर्द्धस्वप्न बतायी गई है उसके कारण ही विवाह संस्कारमें अनेक मनोरञ्जक और अद्भुत प्रथाओंको स्थान मिला है। स्त्री अपने मनोमोहक सौन्दर्य और तीव्र आकर्षणके कारण समाजके लिए विपत्ति स्वरूप समझी गई है। इसका यदि ठीक ठीक उपयोग न किया जाय और आवश्यक नियन्त्रण भी न रखें तो जहाँ यह स्वर्गका मार्ग बना सकती है वहाँ सर्वनाश रूपी रौरवका द्वार भी उन्मुक्त कर सकती है। कदाचित् इन्हीं कारणोंको लेकर सैनिकोंकी जीभ पर स्त्रीके नामका उच्चारण होना एक भारी अपराध और साधकों तथा योगी पुरुषोंके लिए तो स्त्रीका दर्शन मात्र भयानक पाप गिना जाता है। परन्तु, भारतीय धार्मिक दृष्टिकोणमें इसके विपरीत स्त्रीको पुरुषसे भी उच्च स्थान दिया गया है। मनु भगवान्के शब्दोंमें "जहाँ स्त्रियोंका आदर होता है वहाँ देवता रमण करते हैं" यदि इससे भी स्त्रीके उच्च स्थानकी पुष्टि न होती हो तो स्त्री-पुरुष, सीताराम, राधे-श्याम, बहिन-भाई, लड़की-लड़का आदि शब्दों के सम्माननीय प्रयोग परसे ही उसकी स्थान मर्यादा को समझनेमें सहायता मिलती है। इस प्रकार नारीके अर्द्ध सत्य और अर्द्ध स्वप्न होनेमें कुछ भी संशय नहीं है।

कतिपय देशोंमें लग्नके अवसर पर वधूके शरीर को मन्त्रोच्चारण अथवा अन्य विधियोंसे पवित्र किये जानेकी प्रथा प्रचलित है। और उसका शायद यह भाव है कि स्त्रीके शरीरमें अनेक पापात्माओंका प्रभाव प्रत्यक्ष रूपसे पाया जाता है। लग्नके स्वर्ण संयोगमें लोग प्रथक् प्रथक् क्रियाओं और विधियों

द्वारा इस दुष्प्रभावका निवारण करते हैं ताकि पति अपनी सहधर्मिणीके साथ सुख और शान्तिका जीवन व्यतीत कर सके। यार्कशायरमें इसी मान्यताको लेकर विवाहके समय रोटीका टुकड़ा तोड़कर फेंकते हैं। और हमारे यहाँ हिन्दू विवाहोंमें कितनी ही धूप, दीप, नैवेद्य आदि देकर देवताओंको पहिले ही संतुष्ट किया जाता है तब कहीं वरवधू के फेरे पड़ते हैं। कई ऐसी और भी खास क्रियायें प्रचलित हैं जिनसे वधूको और उसके शरीरको पवित्र किये जाने का नियम है। इस सम्बन्धमें अपनी ओरसे बिना कोई नियम दिये, पाठकोंके ज्ञान लाभार्थ, हम आगे चलकर देश विदेशकी इन विचित्र क्रियाओं और लग्नप्रथाओंका विवरण देनेका यत्न करेंगे। इसके पूर्व विवाहके प्रकारों पर कुछ लिखना आवश्यक जान पड़ता है।

प्राचीन भारतमें हिन्दू जातिके भीतर आठ प्रकार की विवाह रीतियां प्रचलित थीं। ब्राह्म, आर्ष, दैव, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच। किन्तु, वर्तमानमें इन रीतियोंका पूर्व जैसा अस्तित्व और व्यवहार नहीं रह गया है। इसी प्रकार पाश्चात्य देशोंमें पहिले तीन प्रकारके विवाह प्रचलित थे। १—बलपूर्वक विवाह (Marriage by capture), २—क्रयपूर्वक विवाह (Marriage by purchase), ३—प्रणय घटित विवाह (Marriage by fascination), इनमें बलपूर्वक विवाहकी प्रथा पाश्चात्य देश समूहसे एक दम उठ गयी है। क्योंकि अब विवाहके लिये किसी बल प्रयोगका प्रयोजन ही नहीं होता। जिस देशके स्त्री-पुरुषोंका एकमात्र अर्थोपार्जन ही जीवनोद्देश बन गया हो वहाँ धनके मीठे प्रलोभनसे मुग्ध न होने वाली स्त्रियाँ भी होंगी, यह सोचना नितान्त मूर्खता है। अतः कहना पड़ेगा कि पाश्चात्य देशोंमें आज जो असंख्य विवाह सम्पादित हो रहे हैं उनका आधारभूत प्रणय और दाम्पत्य जीवनका सुख न होकर केवल स्वार्थ साधन और अर्थलाभका ही प्रयोजन मात्र रह गया है। यद्यपि पाश्चात्य सभ्यताके हामी इन विवाहोंको प्रत्यक्षमें प्रणय घटित (Love matches) कह कर ही सन्तोष करते हैं पर वास्तवमें यह दुनियाँ की आंखों पर परदा डालने और अपनी सभ्यताकी दूसरों पर झूठी धाक जमाये रखनेका ही दुःसाहस जैसा है। इतने पर भी पश्चिमी देशोंके लोग प्राच्य देशीय स्त्रियोंको लांछित करते हुए उन्हें नितान्त उपायहीना और क्रीतदासी बताते नहीं थकते हैं। भारतीय परदा-प्रथा और स्त्रियोंके अवगुण्ठनकी आड़ लेकर उनके सम्बन्धमें नितान्त तथ्यहीन और आधाररहित प्रचार करते आ रहे हैं। दूसरोंके सम्बन्धमें ऐसा उल्टा निर्णय देनेके पूर्व यदि वे अपने आपको और अपने बुनियादी उसूलोंको हिन्दूचरित्र-गुण और पवित्रताके साथ तौलनेका ध्यान रखें तो उनकी आंखें लज्जासे झुक जाएं और उन्हें ज्ञान हो जाये कि पूर्वीय देशोंकी हर एक महानता किस प्रकार अभेद्य और अपरिहार्य्य है! भारतीय विवाह रीतियोंका ध्यानसे मनन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वे भावी दाम्पत्य सुख और पवित्रतासे पूर्ण प्रणयी जीवनका समर्थन कराती हैं। और पाश्चात्य देशोंमें आजके विवाहों को नामके लिए प्रणय घटित कह कर अभिहित किया जाता है पर वास्तवमें वे स्वार्थ लाभ और अर्थ-सिद्धिकी दुर्भावनासे ही सम्पादित होते हैं। जिससे उनमें आगे जाकर स्थायित्व घटित नहीं होता। ऐसे विवाहोंको वहाँ खुल्लम खुल्ला Marriage by arrangement अथवा Marriage of Convenience कहा जाता है।

पाश्चात्य देशवासियोंके भारत सम्बन्धी असत्य प्रचार और दुराग्रही मनोवृत्तिके एक, दो नहीं बल्कि ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जिन्हें पढ़ सुनकर आश्चर्यकी सीमा नहीं रहती। जान पड़ता है कि पूर्वके सम्बन्धमें ऐसी गलत धारणाओंका पोषण करनेसे उनका मन-मुकुर इतना म्लान हो गया है अथवा वे लोग यहाँ तक जघन्यता पर उतर आये हैं कि अपने ही पर्यटकों और अनुभवी विद्वानोंके सत्यतापूर्ण विवरणों और आंखों देखी घटनाओं

को कानोंसे सुनना तक गर्हित पाप लेखते हैं। अरुण रश्मियोंसे प्रकाशमान दिवाभागको अन्धकार मयी रजनी बता देनेकी उनकी यह नीति कितनी अन्यायपूर्ण और हेय है इसका नीचेके उदाहरणसे भलीभांति स्पष्टीकरण हो जाता है।

इङ्गलैण्डकी एक लेखिका मिसेज एल० जे० मिलनने पूर्वीय देशोंकी यात्रा समाप्त करने पर अपने भ्रमण वृत्तान्तमें यहाँ की सामाजिक अवस्था पर निर्णय देते हुए लिखा था कि—"पश्चिमी और पूर्वीय देशोंकी स्त्रियोंके स्थानके सम्बन्धमें देखा जाय तो अतिसामान्य पार्थक्य ही दृष्टिगत होता है। ×××××× पाश्चात्य स्त्रीकी अपेक्षा पूर्वीय स्त्री किसी भी अंशमें असहाय नहीं है और सामाजिक तथा पारिवारिक अधिकारोंकी दृष्टिसे भी उसे यथेष्ट सुविधायें दी गई हैं।" मिसेज मिलन की इस पुस्तकके प्रकाशित होने पर समग्र ग्रेटब्रुटेन में एक प्रतिवादकी लहर उठ खड़ी हुई थी। वहाँ के समाचारपत्रोंने लेखिकाके मतका तीव्र विरोध करते हुए उसका बुरी तरह मखौल उड़ाया था। कहनेका हेतु यह कि पाश्चात्त्य देशोंके लोग जब अपने ही प्रतिनिधि विद्वानों और विदुषियोंके सत्य कथनकी इस भांति अवमानता करने पर तुले हैं और उनके इस पवित्र कृत्यको पागलका प्रलाप कहनेमें भी नहीं हिचकते तब उनकी आडम्बरी सभ्यता और झूठी अहम्मन्यताकी आपसे ही कलई खुल जाती है। पिछले दिनों जब विदेशोंमें 'इण्डिया स्पीक्स' और 'बंगाली' फिल्मोंके प्रदर्शन द्वारा लोगोंको भारतके खिलाफ फुसलाया जाता था तब भी भारतीयों द्वारा इसका विरोध किये जाने पर विदेशियोंने अपनी उस निंद्य नीतिके समर्थनमें ही बेसिर पैरका प्रचार आरम्भ कर दिया था। इस तरह आजका पश्चिम, पूर्वीय देशोंकी अच्छाइयोंको माननेके लिये तैयार नहीं है और इसलिए पूर्व और पश्चिममें एकत्वका परिलक्षित होना असम्भव ही जान पड़ता है।

अब हम संसारकी अद्भुत और मनोरञ्जक लग्न-प्रथाओंके सूत्रको लेते हुये लेखके असली विषय पर आते हैं। इन लग्न–प्रथाओं और वैवाहिक-क्रियाओंमें पाश्चात्त्य देशोंकी प्रथाओं पर विशेष ध्यान देनेसे आप ही पता चल जाता है कि वहाँ विवाह-बन्धनोंमें सतीत्व और दाम्पत्य-जीवनके सुख की कोई महत्ता नहीं है। बल्कि अधिकांश प्रथाएं एकमात्र कामवासना और विलासी जीवनके नग्न-स्वरूपका ही प्रदर्शन कराती हैं।

नार्वे और स्वीडनमें विवाह-संस्कारकी यह विशेषता है कि वहाँके निवासी कन्याओंके सदाचरणके विषयमें एकान्तरूपसे उदासीन रहते हैं। पर उनके विवाहित होनेके उपरान्त यदि वे अपना पातिव्रत भङ्ग करे तो यह एकदम अमार्जनीय और गुरुतर अपराध समझा जाता है। नार्वेमें कहीं-कहीं वय-प्राप्त कुमारियोंके एकसे भी अधिक प्रेमी और चाहने वाले होते हैं। फलतः अनेक स्थलों पर इस प्रकारके प्रणयके फलस्वरूप विवाहसंस्कार होनेके पूर्व ही कन्याएं कई सन्तानोंकी माताएं हो चुकती हैं। बादमें जो भी इन्हें गृहिणी रूपसे विवाहपूर्वक स्वीकार करता है उसे इन सन्तानोंको भी स्वीय सन्तानोंके रूपमें ग्रहण करनेको बाध्य होना पड़ता है। नार्वेका राजकीय कानून भी इसमें बाधक नहीं होता। स्वीडन निवासी विवाहोपलक्षमें रोटीको बड़ी मान्यता देते हैं। उनके यहाँ विवाहके दिन प्रत्येक निमन्त्रित व्यक्तिको बिदाके समय एक बड़ी-सी रोटी भेंट की जाती है। जिसे वह घर पहुँचते पहुँचते अपने अन्य मित्रोंमें भी वितरण करते हैं। इस प्रकार लोगोंकी भावना है कि उस रोटी-विशेषको जितनी भी अधिक संख्याके लोग भक्षण करेंगे, नवदम्पतीके जीवनमें सुख-सौभाग्य उतने ही अधिक वृद्धिको प्राप्त होंगे।

संसारमें रुशिया एक विशाल राष्ट्र माना जाता है। यह ग्रामोंमें आबाद न होकर अधिकांश नगरों में ही आबाद है। वर्त्तमान महायुद्धके पूर्व और गत महायुद्धके अनन्तर यहाँ के समस्त वैयक्तिक

सामाजिक और राजनैतिक व्यापारोंमें युगान्तर आ उपस्थित हुआ था। सैकड़ों रूढ़ियों और अंध-विश्वासोंका युगव्यापी प्रचार तब सोवियट रशिया से सदाके लिए नाम शेष कर दिया गया। इसके अनुसार वहाँकी विवाहप्रथाएं भी अपने सर्वथा अभिनव और नवीन रूपको प्राप्त हुई। अब विवाहों में न तो वह धूमधाम है और न पहिले जैसी फि-जूलखर्ची ही आड़े आती है। बल्कि वर वधू साधारण तौर पर एक सरकारी रजिस्टर पर हस्ताक्षर करते हैं और इस प्रकार बिना किसी हो-हल्ला और भागदौड़के विवाह बन्धनमें आबद्ध हो जाते हैं। पहिले रशियामें कन्याकी १७ वर्षकी आयु होते ही विवाह संस्कार हो जाता था, बादमें इस प्रथाका रूप यहाँ तक विकृतिको प्राप्त हुआ कि तीस-तीस वर्षकी स्त्रियाँ अपने दश-वर्षीय पतियोंको मानो गोदमें उठाकर गिर्जाघरोंसे बाहर आने लगीं। परन्तु ज़ार-शाहीके नाशके बाद नवीन रूसकी प्राण-प्रतिष्ठा होने पर इस प्रकारके विवाहोंका एकान्त रूपसे खात्मा कर दिया गया। अब समग्र रशियामें स्पेन के अनुसार विवाहकी अनुमतिके लिये अदालतका आश्रय लेनेका रिवाज चल पड़ा है। यदि किसी कारणसे वहांके प्रणयी युवक-युवतियोंके विवाहमें माता-पिता बाधक होते हैं तो इसके लिए युवक-युवतियोंको अपने अभिभावकों पर अभियोग लगाने के निमित्त अदालतका दर्वाजा खुला है। ऐसे मामलोंमें सोवियट रूसकी सरकार माता पिताओंसे कैफियत तलब करती है और ऐसे ६६ प्रतिशत मामले युवक-युवतियोंके पक्ष हीमें सुने जाते हैं और फैसले होते हैं।

विवाहके अवसर पर वधूके शरीरको पापात्माओं के प्रभावसे मुक्त करनेके लिये विभिन्न देशोंमें अनेक प्रकारकी प्रथाओं और अन्धविश्वासोंका युग-व्यापी प्रचार होता आरहा है। सैनिकोंके विवाहमें उनके उच्च पदाधिकारी और और अन्य सैनिक अपनी तलवारें खींचकर खड़े रहते हैं और वर वधूको तल-वारोंकी कमानके नीचेसे गुजरना पड़ता है। लोगों का कथन है कि इस रीतिसे प्रेत बाधाएं (Evil spirits) सहज ही निवारित हो जाती है। इसमें कई एकोंका यह भी विश्वास और मान्यता है कि सैनिकका विवाह उसके अफसरोंकी तलवारोंकी छाया के नीचे होनेसे वह उसके भावी सैनिक जीवनके लिये शोभा और सफलताका रूप होता है। डरहम में इन बाधाओंके निवारणार्थ वर वधूके सिर पर से दनादन गोलियाँ छोड़ी जाती हैं। अफ्रिकाकी एक जातिमें तो यह रिवाज है कि जिस दिन वर-वधूको अपने घर लाया जाता है उस दिन सारी रात वे अपने घरके द्वार पर पहरा देने बैठते हैं। उस समय उनकी तलवार खुली रहती है और सारी रात्रि वे सो, बैठ नहीं सकते।

वायर टापुओंमें यह पुराना रिवाज है कि वधू को एक अन्धकारपूर्ण गृहमें छिपा दिया जाता है और उसके अन्वेषणार्थ वरको नियुक्त करते हैं। उस गृहमें अन्धकार तो होता ही है और वरको इसका किञ्चित्मात्र भी ज्ञान नहीं रहता कि वधूको अमुक स्थान पर छिपाया गया है। ऐसी अवस्थामें वरको अपनी कर्त्तव्यबुद्धिसे जैसे भी हो वधूको ढूंढ निकालना पड़ता है। अन्यथा प्रस्तावित विवाहकी रस्में फिर त्रिशंकु जैसी अधोमुख लटकी रह जाती है।

मिश्र देशमें नियम है कि विवाहकी क्रियामें सम्पन्न होनेके पूर्व वर-वधू एक दूसरेको खुली आंखों देख तक नहीं सकते और यदि भूलसे एक दूसरे को देख भी लें तो उनका वैवाहिक जीवन सफल नहीं होता। हिन्दुस्तानमें भी यह प्रथा कहीं-कहीं प्रचलित है। जेरुसेलमके यहूदियोंके विवाहमें तो यह रिवाज है कि जब तक लग्नकी तमाम रस्में अदा न हो जावें तब तक वधूकी आंखोंमें कसकर पट्टियाँ बंधी रहती है। और यदि वह अपनी आंखें खोल दे तब इसके लिये उसे जाने क्या-क्या कहा सुनी की जाती है।

बलगेरियामें विवाहोपरान्त पति पत्नीको एक गृह विशेषमें बन्द कर दिया जाता है। जहाँ वे एकदम ७ दिन पर्यन्त बन्द रहते हैं। और इस बीच

में किसी भी उपायसे बहिर्गत नहीं हो सकते। इस प्रथाकी पालना वहाँ विशेष रूपसे आवश्यक और अनिवार्य मानी जाती है और वर वधू इसका सोल्लास अनुगमन करते हैं। वहाँ उन्हें एक दूसरेका मुँह खुलकर देखनेका अवसर प्राप्त होता है। क्योंकि विवाहके पूर्व उक्त देशमें स्त्रीका मुँह देखना अपशकुन माना गया है। और जो इस नियमके विरुद्ध विवाहके पूर्व ही स्त्रीका मुख दर्शन कर लेते हैं उन्हें नितान्त दुर्भाग्यवान् समझा जाता है। अतः वहाँ इस दिवसके पूर्व अपनी भावी पत्नीको देखनेका कोई भी दुःसाहस नहीं करता।

ट्रान्सवालनीयांमें विवाहके समय एक यवनिका विशेषकी आड़में तीन सुन्दरियोंको बैठालते हैं, जिनमें एक नववधू भी होती है। उसकी अपनी पत्नी कौन है इसे शोध निकालनेका काम पतिका होता है। यदि इसमें पतिका अनुमान ठीक नहीं उतरा तो लोग उसे अभागा और अल्पजीवी समझते हैं। परन्तु इस रीतिके सम्पादनमें प्रायः अधिक संख्या के पतियोंको कृतकार्यता प्राप्त होती है। क्योंकि तीन सुन्दरी स्त्रियोंमेंसे अपनी स्त्रीको पहिचाननेका काम कोई कठिन नहीं होता। नववधूकी आंखोंकी लज्जा और संकुचित शरीर अन्य तरुणियों की कौतुकभरी आंखों और सस्मित अधरोंसे अलग ही जान पड़ता है। और इसीसे अपनी पत्नीकी खोज में निकले हुए पतिको टोह लेनेमें अधिक कठिनाई नहीं होती। इसी भांति इस्थोनियांमें वरके सालेको स्त्रीवेष धारण करना पड़ता है और वर उसे अपने बुद्धिकौशलसे ढूँढ निकालता है। किसी किसी देशमें तो विवाहके उपरान्त नवदम्पतिको कुछ समय पर्यन्त अलग अलग या बाहर रहनेकी प्रयोजनीयता होती है। हमारे देशमें भी कहीं कहीं लग्नके बाद बहूरानीके घरमें आने पर वर उसे कई दिन तक देख नहीं सकता और न एकान्तमें प्रेमालाप ही कर सकता है। और कहीं कहीं यह प्रथा भी देखी सुनी जाती है कि विवाहोपरान्त नवदम्पति कई दिन पर्यन्त दूसरों के घरमें बाहर पड़े रहते हैं। क्योंकि जब तक गृहप्रवेशका शुभ मुहूर्त्त नहीं आता तब तक वे निज गृह में प्रवेशलाभ नहीं कर सकते। इस शुभमुहूर्त्तके मार्ग प्रतीक्षणमें कभी कभी ५-६ दिन तक व्यतीत हो जाते हैं।

चीन देशमें एक विचित्र और आश्चर्यपूर्ण प्रथा का प्रचलन पाया जाता है कि वहाँ जिस सोहागकी सेज पर नवदम्पतिको सुलाते हैं, उसमें बीचोंबीच एक तेज धार वाली विशेष प्रकारकी तलवार रखी जाती है। जिससे वे एक दूसरेसे आलिङ्गन नहीं कर सकते। मुक्त एकान्तमें वरवधू मधुर और स्निग्ध रात्रि के समय इस कठोर नियमका किस प्रकार पालन करते होंगे—यह कहना कठिन है। परन्तु, जो इसकी पालना नहीं करते, उन्हें अनेक भय भावनाओंका सामना करना पड़ता है। इससे प्रत्येक नवदम्पति इसका अनिवार्यतः पालन करते हैं। वोर्नियोकी एक जातिमें दूल्हा दुल्हिनको प्रायः ७२ घण्टे पर्यन्त प्रथक् प्रथक् रहना पड़ता है। और क्वीन्सलेण्डकी एक जातिमें वर-वधू दो मास तक अलग रहते हैं। जावा की कतिपय जातियोंमें केवल पांच दिवस पर्यन्त अलग अलग रहनेका रिवाज प्रचलित है। स्त्रीको रहस्यमयी लेखते हुए वैवाहिक जीवनकी सुरक्षाके लिए अफ्रीकाकी कई जातियोंमें तो यह प्रथा भी चल पड़ी है कि वहाँ पुरुष और स्त्रियोंके भोजनका अलग अलग प्रबन्ध रहता है। भारतमें भी कईएक जगहों पर यही प्रथा प्रचलित है। पर उसका कारण भयबाधाओं के शमनसे सम्बन्धित न होकर वह सर्वथा नैतिक और मान्य है। सर्वियामें कुमारिकाएं पुरुषोंके साथ बैठ कर नहीं खातीं। परन्तु प्रत्येक बहूरानीको विवाह-संस्कारके अवसर पर अपने पति-प्राणाधारके साथ बैठ कर खानेको बाध्य होना पड़ता है। अन्य कई देशोंमें भी एक साथ बैठ कर खाने पीनेसे लग्नबन्धन में आबद्ध होनेकी प्रथा देखने सुननेमें आती है। जापानमें इस अवसर पर एक ही थालीमें मछलीका हलुवा खाया जाता है। जब तक वर-वधू एक ही थाली में बैठ कर हलुवा नहीं खा लेते तब तक भांवर परिक्रमा आदि नहीं होती। परन्तु, भोज्य पदार्थका एक

भी ग्रास मुख गह्वरमें पड़ते ही वे दोनों सदाके लिए दाम्पत्यजीवनके अटूट बन्धनमें बंध जाते हैं।

हम लोगोंमें जैसा कि वर वधूके वस्त्रोंमें ग्रन्थि जोड़नेका नियम है, वैसा ही ग्रन्थि-बन्धनके समान सेवील जातिमें वर वधूका एक ही वस्त्र सिलाया जाता है। ड्यूक आफ यार्क द्वीपमें दूल्हा दुलहिनके शीर्ष-भागमें नारियल फोड़नेकी विचित्र प्रथा प्रचलित है। कोरियामें लग्नके पश्चात् नववधूको दो दिन तक पतिदर्शनकी मनाई रहती है, इस आज्ञाका वह ठीक-ठीक पालन कर सके, इसके लिए उसकी आंखकी पलकोंमें गोंद चिपका दी जाती है ताकि वह इस बीच में आंखें न खोल सके। इस भांति बहूरानीकी आंखों के आर्जरको दो दिनके लिये कैदखाना बना दिया जाता है।

विवाह प्रथाका चाहे कुछ भी उद्देश हो और उसकी उत्पत्ति चाहे कभीसे आरम्भ हुई हो पर अधिकांश देशोंमें अधिक कालसे ही लग्नके साथ साथ अनेक चित्र विचित्र रस्म रिवाजोंका प्रचार होता चला आया है। जिनमेंसे कुछकी झांकी इस क्षुद्र निबन्ध परसे अवश्य ही हो जाती है। पर वास्तवमें अधिकांश प्रथाओंका जन्म निरे अन्धविश्वास और वह भी मान्यताओंको लेकर ही हुआ जान पड़ता है। इस विवरणसे यह बात तो बिलकुल स्पष्ट है कि कहीं कहीं पर सभ्यताकी आड़में अन्धविश्वासोंकी गन्दगी गले तक जा पहुंची है। फिर भी सभ्यताकी डींग हांकने वाले उस ओर न्याय दृष्टिको घुमाना तक पसन्द नहीं करते। बल्कि उसे लोकमान्य कह कर अपनी नैतिक बुराइयों और कमजोरियोंसे साफ बच जाना चाहते हैं।

हृदयसे !

असमञ्जसमें पड़ कर भोले
यौवन-निधि मत खो देना।
स्वप्न कल्प-पादपका लेकर
विषके बीज न बो देना ॥१॥
भूले हो किस मस्त तानमें
किस धुनमें हो मतवाले।
ढाल-ढाल कर पीते जाते
मादक मदिराके प्याले ॥२॥
छोटीसी बगियामें फूले
फूल अनेकों रसभीने।
समझ बूझ कर चुनने जाना
तोड़ न लेना बिन चीन्हे ॥३॥
जुही मालती गेंदा नरगिस
किंशुक चम्पक औ बेला।
झूम झूम मन हरने वाला
यह गुलाब भी अलबेला ॥४॥

कमल कुमुदिनी मुदित केतकी
किस किस पर ललचाओगे।
दिनकर हिमकर मधुकर उनके
प्रीतम भी तो पाओगे ॥५॥
कीच सने कुछ घिरे कण्टकों-
से कुछ हैं रसहीन हुए।
रूप रंग रञ्जित भी सौरभ-
से हैं दीन विहीन हुए ॥६॥
पञ्चमस्वरमें कोयल बोली
डोलीं कलियां मतवाली।
तान मस्त हो ढाले जाते
फिर भी प्याली पर प्याली ॥७॥
इनी गिनी जीवनकी घड़ियाँ
उलझन हीमें मत खोना।
पड़े न मलमल हाथ, सीस धुन
अन्त समयमें फिर रोना ॥८॥

[कवयिता—श्री यज्ञदत्तजी शास्त्री 'रसिक' विद्यावाचस्पति]

नेत्ररक्षाके उपाय

[लेखक—श्री डाक्टर श्रीनाथ तिक्कू शास्त्री A.M.S. (B.H.U.)]

यह प्राकृतिक नियम है कि जिस वस्तु का अनुचित रीतिसे अथवा अधिकतासे उपयोग किया जाता है वह वस्तु शीघ्र ही विकृत हो जाती है। आयुर्वेद शास्त्रोंमें रोगोंके कारण चार प्रधान वर्गोंमें विभक्त किये गये हैं। 'अयोग'— अर्थात् किसी पदार्थका बिल्कुल उपयोग न करना। 'अतियोग'— किसी द्रव्य का अधिक प्रयोग करना। 'हीनयोग'— कम उपयोग करना। 'मिथ्यायोग'— अनुचित रूपसे द्रव्योंका उपयोग करना। यह चारों कारण नेत्ररोगों पर भी फलित होते हैं। यदि नेत्रोंसे कार्य ही न किया जाय अर्थात् बहुत काल तक नेत्र बन्द ही किये जाएं तो वह नेत्रोंका 'अयोग' कहलायेगा। यदि नेत्रोंसे उचित मात्रासे अधिक कार्य लिया जाय अर्थात् उनको विश्राम ही न दिया जाय तो यह उनका 'अतियोग' होगा। यदि नेत्रोंसे थोड़ा ही कार्य लिया जाय तो वह उनका 'हीनयोग' होगा। यदि नेत्रोंसे हम सूक्ष्मवस्तुओं को, अति दूर वस्तुओंको या अलक्ष्यवस्तुओंको देखने का भरसक प्रयोग करते रहेंगे, या जब चकाचौंध करने वाले प्रकाशशील वस्तुओंको देखनेका दुःसाहस किया जाता है, या मन्दप्रकाशमें पुस्तकें पढ़ी जाती हैं अथवा कोई सूक्ष्म कढ़ाई सिलाई इत्यादि कार्य किया जाय तो इस प्रकारकी क्रियाएं ही नेत्रोंका 'मिथ्यायोग' कहलाती हैं। "संक्षेपतः क्रियायोगो निदानपरिवर्जनम्" अर्थात् "कारणका परिहार ही उचित और संक्षिप्त चिकित्सा है" इस सिद्धान्तके अनुसार अयोग अतियोगादि कार्योंका या पदार्थोंका परित्याग करना नेत्रों की रक्षाका सबसे उत्तम उपाय है। नेत्रोंके रक्षात्मक उपायोंको हम यहाँ तीन मुख्य वर्गोंमें विभक्त करेंगे— (१) आहार, (२) विहार, (३) युक्ति। अब इन्हीं शीर्षकोंके क्रमसे इसका विस्तृत वर्णन करेंगे।

(१) आहार—

नेत्रोंकी रक्षाके लिये निम्नलिखित पदार्थोंका उपयोग नहीं करना चाहियेः—

अम्ल, तिक्त तथा कटुपदार्थ — जैसे लालमिर्च, आचार, खटाई, चटनी इत्यादि। क्षार लवण तथा अधिक लवणमय पदार्थोंका उपयोग करना भी वर्ज्य है।

मधुरपदार्थोंका उपयोग करनेसे दृष्टि बढ़ती है, परन्तु खट्टे और क्षार पदार्थोंके सेवनसे दृष्टिमन्दता हो जाती है। मद्य और मांसका अधिक सेवन करना भी नेत्रोंके लिए हानिकारक है। कुछ शाकजातीय पदार्थ जैसे सर्षपशाक, गोभी इत्यादि नेत्रोंके लिये अधिक सेवन करनेसे हानिप्रद हैं, परन्तु इसके विपरीत कुछ शाक नेत्रोंके लिये पथ्यतम माने गये हैं जैसे— लोणी (कुलफेका शाक) सुवर्चला (सौंचल का साग) गाजर, पटोल (परवल) कालशाक, वास्तुकी (बथुएका शाक) इत्यादि। नेत्रोंके लिए पलाण्डुका सेवन करना भी अत्यन्त लाभप्रद है। जिन लोगोंको रक्तान्ध्य (Hight blindness) का रोग हो उनके लिये तो पलाण्डु अतीव हितकर है, कारण कि इसमें जीवनीयद्रव्य (Vitamin B & D.) अधिक मात्रा में पाये जाते हैं, जो कि नेत्रोंके लिये लाभप्रद हैं। दालोंमेंसे उड़दकी दाल, मसूरकी दाल नेत्रोंके लिये हितकर नहीं है। मांसवर्गमेंसे मोर, कछुआ, बकरी इनका मांस नेत्रोंके लिये उत्तम है परन्तु मछलीका सेवन करना नेत्रदृष्टिके लिए अति हानिप्रद है। इसके अतिरिक्त वसामय पदार्थोंका अधिक उपयोग करना भी नेत्र रक्षाके लिए वर्जनीय है। फलवर्गमेंसे द्राक्षा, सेव, माल्टा, अनार, नाशपाती, आंवला, इत्यादि फल

विशेष हितकर हैं। गोदुग्ध तथा गोघृत भी नेत्रोंकी दृष्टि शक्तिकी वृद्धि करते हैं।

इसका सूत्ररूपसे यह अभिप्राय समझना चाहिए कि शाकोंमें सर्षपके विना पत्र शाक, कन्दोंमें गाजर और पलाण्डु, फलोंमें रक्तवर्णके फल नेत्रोंके लिए उत्तम लाभप्रद हैं।

(२) विहार—

मनुष्यके अपने स्वास्थ्यको उत्तम रखनेकी कुंजी अपनेही हाथमें है। यदि मनुष्य अपनी दैनिक क्रियाओंको ही नियमित रूपसे करते रहें तो उनका स्वास्थ्य उत्तम रह सकता है। 'विहार'में उन्हीं क्रियाओंका अन्तर्भाव होता है जोकि मनुष्यके अपने हाथमें हैं। नेत्रोंकी रक्षाके लिए प्रत्येक मनुष्यको निम्नांकित क्रियाओंकी सावधानता रखनी चाहिये।

(१) नेत्र रक्षाके लिए प्रभातमें सूर्योदयके पूर्व ही उठना चाहिए। सूर्य नमस्कार, प्राणायाम सूर्योपस्थान यह क्रियायेंभी नेत्रोंकी ज्योति बढ़ाती हैं। शीर्षासन भी नेत्रोंके लिए लाभकर है। परन्तु यदि भोजन स्निग्ध और पौष्टिक मिले तभी। ग्रीष्म-ऋतुमें या शरद्ऋतुमें नग्नपाद होकर उषाकालमें हरी-हरी घास पर भ्रमण करना भी अच्छा है।

(२) भोजनके अनन्तर ही गीले हाथोंसे ही नेत्रोंको मलना चाहिए तथा उसके बाद दोनों पैरोंके अंगूठोंको भी खूब मलना चाहिए। नेत्रोंको मलते समय इस श्लोकको यदि पढ़ा जायतो उससे आध्यात्मिक और मानसिक मननसे भी उत्तम लाभ होता है।

"शर्यातिश्च सुकन्या च शक्रश्च च्यवनोऽश्विनौ
षडेते गारुडीं दृष्टिं मह्यं ददतु सर्वदा ॥"

(३) पैरोंको स्वच्छ रखना नेत्र रक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक है। प्रतिदिन रातको भोजनके पूर्व उष्ण जलसे पैरोंको धोना चाहिए। पैरोंके तल भागको और अंगुलियोंके मध्य भागोंको स्वच्छ रखनेमें विशेष सावधानता रखनी चाहिए, यह अनुभवसे देखा गया है कि पैर और आंखका पारस्परिक गाढ़-सम्बन्ध है, अतः पैरों पर नियमित रूपसे तैल मर्दन करना तथा उनकी स्वच्छताके प्रति विशेष ध्यान रखना अत्यन्त ही आवश्यक है। रातको गन्दे पैर लेकर सोने वालोंके नेत्र तो कभी भी स्वस्थ नहीं रहते। पैरोंको रूखा रखना अत्यन्त ही हानिकर है। नंगे पैरोंसे घूमना भी बहुत बुरा है। विशेषतया धूप, धूल रेत आदिमें। पादुका (खड़ाऊं) का धारण करना नेत्रोंके लिए उत्तम है। चप्पल भी अच्छी है। परंतु बूट (फ्लैक्स इत्यादि) का धारण करना नेत्रोंको हानि पहुंचाता है, फ्लीट तो नेत्रोंके लिए अत्यन्त ही हानि-कारक है। कारण यह है कि इससे पैर वायुके सम्पर्कमें नहीं आते हैं और उनका स्वेद भी उसी तरह आवरण बनाकर रोमकूपोंको ढक देता है, जिससे उनके अन्दर शुद्ध वायु तथा शुद्ध रक्तका संचार नहीं होता, अतः उससे नेत्रों पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। आजकल दफ्तरों कालिजों तथा अन्य विभागोंमें भी काम करने वाले सज्जन दिनभर बन्द बूटोंमें ही अपने पैरोंको रखते हैं, यहाँ तक कि भोजन भी कई सभ्य कहलाने वाले पुरुष बूट पहनकर ही करते हैं। २५ प्रतिशत व्यक्तियोंकी नेत्र दृष्टिकी मन्दताका यही कारण है। अब तो यूरोपकी बड़ी २ बूट फैक्टरियाँ इसीलिए इस प्रकारके जूतोंको तैयार करती हैं जो कि जालीदारहों और वायुके सम्पर्कका प्रतिरोध न करते हों। शीत प्रदेशोंके मनुष्योंके लिए शीतकालमें बन्द बूटोंका उपयोग आवश्यक है, परन्तु उष्ण प्रदेशोंके मनुष्योंके लिए इसका अनुकरण प्रशंसनीय नहीं हो सकता। भारतके धर्म शास्त्रियोंने तो पैरोंकी शुद्धतासे ही दैनिक कृत्यके आरम्भका विधान कहा हुआ है और 'आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत्' अर्थात् गीले पैर होकर भोजन करना, चाहिए, परन्तु गीले पैर होकर सोना नहीं चाहिए इत्यादि नियम भी सूत्र रूपसे कहे हैं।

(४) प्रत्येक व्यक्तिको अपनी शक्तिके अनुसार ही नेत्रोंसे काम लेना उचित है। विशेष करके अध्ययनशील या लेखन कार्य करने वाले तथा कढ़ाई सिलाई इत्यादि कार्य करने वाली महिलाओंको इसकी ओर ध्यान देना उचित है। मन्द प्रकाशमें या अत्यु-

ज्ज्वल प्रकाशमें भी पढ़ना काढ़ना सीना इत्यादि सूक्ष्म कार्य नहीं करने चाहिए। पुस्तक अति समीप रखकर पढ़ना भी अनुचित है। रातको यदि पढ़ाई इत्यादि कार्य करने हों तो मनुष्य को चाहिए कि वह इस प्रकार बैठे जिससे प्रकाश पीछेसे आजाय। अत्यन्त वेगसे घूमने वाले तथा अत्यन्त दूर और अस्पष्ट वस्तुओंको देखनेका प्रयास नहीं करना चाहिए, इससे चाक्षु-वितानके स्तर तथा नेत्र के पार दर्शक माध्यम (Reflectian Media) पर किरणोंकी अस्तव्यस्त गति होनेसे उनके तत्वोंमें विकृति कारक प्रभाव पड़ता है। इसीसे धर्मशास्त्रकारोंने उदय तथा अस्तके समय सूर्यको देखनेका निषेध किया है। मलिन दर्पणको भी देखना अच्छा नहीं है अथवा रात्रिको दर्पण देखनाभी नेत्र दृष्टिके लिये बुरा होता है। अपवित्र द्रव पदार्थों (मूत्र इत्यादि) में तथा जलमें प्रतिबिम्बको नहीं देखना चाहिए। अति प्रबल विद्युद्दीपोंके प्रकाशमें पढ़नेका अभ्यास वर्ज्य करना चाहिये। लालटेन, मोमबत्ती या तेलके दीपकके प्रकाशमें पढ़नेका यदि काम पड़े तो उस समय कमरा बन्द नहीं करना चाहिए। कारण कि इनसे जो दूषित वायु (Carban) उत्पन्न होती रहती है उसके निकलनेका मार्ग खुला होना चाहिये अन्यथा यह दुष्ट वायु नेत्र दृष्टिकी विकृतिके अतिरिक्त शिरःशूल तथा श्वास संस्थानके अंगों पर बुरा प्रभाव डालता है।

(५) प्रातः और सायं सूर्योपस्थान करना भी नेत्रोंके लिए लाभकारी है। यदि तैल-मर्दन करके प्रातः कालीन धूपका नग्न शरीरसे सेवन किया जाय तो उससे चर्मके अन्दर विटामिन D. की उत्पत्ति होती है। यह विटामिन डी. चर्म रोगोंको तथा नेत्र रोगोंको दूर करनेमें सहायता करता है। प्रातः कालीन किरणोंमें पाटल रश्मियां (Altoavoilet Rays) पाई जाती है यह किरणें चर्म तथा नेत्रोंके लिए अत्यन्त लाभ पहुँचाने वाली होती हैं। वैज्ञानिक लोग इन रश्मियोंको पारदीय बरण्यके विशेष उपकरणों के साथ कृत्रिम रीतिसे उत्पादन करके रोगियोंकी चिकित्सा करते हैं। चीड़के जंगल, पर्वत, नदी इन स्थानोंमें यह किरणें अधिक पाई जाती हैं, अतः इन स्थानों पर निवास करने वालोंको इनका लाभ उठना चाहिए।

(६) जब अत्यधिक गर्मी होती है और गर्मीमें विश्रान्त होकर या चलकर शीत जलमें पैर डाले जाँय तो उससे नेत्र पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त रात्रिजागरण, अत्यधिक और निरन्तर रोना, चिन्ता करना, अश्रुके वेगको अथवा मलमूत्र, उद्गार (डकार) छींक, अपानवायु, वमन इत्यादि वेगोंका निरोध कभी भी नहीं करना चाहिए कारण कि इनके निरोधसे न केवल नेत्र ही अपितु अन्य संस्थान भी विकृत होते हैं। धुंआ, धूल, वायुके तीव्र झोंके और आंधीका नेत्ररक्षाके लिए सदा ही परिहार करना चाहिए। इनसे नेत्र विकृत होते हैं तथा पोथकी (कुकरे Trachcnec) इत्यादि नेत्रोंके भयङ्कर रोग होते हैं। सिर पर बोझा उठाना भी नेत्र तथा मस्तिष्क शक्तिके लिए हानिकारक है। सिर पर अधिक बाल रखने भी नेत्र दृष्टिके लिए उत्तम नहीं हैं। शिर विशेषतया शिरके मध्यभागको सदा ही तैलसे स्निग्ध रखना चाहिए। पैर और नासा रन्ध्रोंमें भी तैलका तर्पण करना चाहिए। उष्णजलसे सिरको धोना नेत्र दृष्टिके लिए बुरा है। शिरको सभी ऋतुओं में शीत जलसे ही धोना उचित है। दूसरोंके द्वारा उपयोग किए गए अथवा मलिन तौलिये और रूमाल का उपयोग करना विशेष कर उनसे नेत्रोंको पोंछना अत्यन्त हानिकारक है, इनके द्वारा ही प्रायः पोथकी इत्यादि रोगीके कीटाणु नेत्रोंमें प्रवेश करके अनेक भीषण रोगोंको उत्पन्न करते हैं। मैथुनका अधिक सेवन करना एवं पान मद्यपान करना भी दृष्टिके लिए अनुचित है। तमाखूका अभ्यास भी नेत्र-दृष्टिको विकृत करता है। सिगरेट हुक्का इत्यादि पीते समय धुएंको मुंहसे पीकर नासिकासे नहीं छोड़ना चाहिये इससे धुंआ नासा रन्ध्रके ऊपर तो अस्थि रन्ध्रोंसे होकर मस्तिष्क तथा नेत्रकी कोमल रक्तवाहिनियों और नाड़ीतन्तुओंको हानि पहुँचाता है।

हरा रंग नेत्रोंके लिए अधिक उपयोगी है अतएव मनुष्यको हरे रंगकी वस्तुओंको अपनी आवश्यक वस्तु सामग्रीमें अधिक रखना चाहिये, ताकि उसे हरे रंगको देखनेका अधिक अवसर मिला करे। यदि प्रखर धूपमें चलनेका अवसर आ पड़े तो सिरको ढक कर छाता धारण कर तथा नेत्रोंके ऊपर हरे रंग-वाला शुद्ध चश्मा लगा कर चलना उचित है। हिम पर यात्रा करते समय और रेलगाड़ीकी यात्रा करते समय भी हरे रंगवाले उत्तम कांचके चश्मेका प्रयोग करना अधिक लाभकारी है। लाल रंग नेत्रोंके लिए अधिक हानिकारक है। अतएव इस प्रकारके वस्त्र, कांच या वस्तुओंका उपयोग भी अच्छा नहीं है। विबन्ध (Constipation) नेत्रोंके लिए अति हानिकारक होता है; अतः विबन्धको परिहार करनेका ध्यान भी रखना चाहिए।

३—युक्ति

विशेष औषधियोंके सेवनके बिना ही तथा अपनी अभ्यस्त उचित क्रियाओंसे अथवा उपकरणोंके द्वारा नेत्रोंकी रक्षा करनी 'युक्ति' कहलाती है। 'युक्ति' के शीर्षकमें जिन साधनोंका वर्णन किया जायगा वे सब नेत्रोंकी रक्षाके लिए मानो अमोघ-शक्तिका कार्य करते हैं। निम्नलिखित युक्तिपूर्वक विधियाँ नेत्ररक्षाके लिए आवश्यक लाभ करने वाली हैं :—

१—प्रातः और सायं सूर्योदयके पूर्व और सूर्यास्त के अनन्तर मुँहमें शुद्धजल भर लो, फिर नेत्रों का शीतजलसे आसिञ्चन (पानीसे सेंचना) करो यह क्रिया कम से कम तीन बार करनी चाहिये जब तक कि नेत्र जलसे शीतल और भरी दृष्टिसे प्रतीत होने लगे।

(२) नस्यक्रिया—रात्रिको जल निर्मलपात्रमें भर कर रखो। प्रातः अरुणोदयमें ही उठकर शौचादिसे निवृत्त होकर उस जलको नासापुटों (Nostrils) से पीकर मुँहसे छोड़ो। पहले पहले इस क्रियाके करनेमें कुछ कठिनता सी प्रतीत होने लगती है परन्तु फिर अभ्यासके द्वारा सब सरल जान पड़ता है। इस क्रिया के करनेसे दृष्टिबल तो बढ़ता ही है परञ्च इसके साथ ही वली (झुर्रियां पड़नी) व्यङ्ग (मुँह पर काले धब्बे पड़ने) बालोंका असमयमें ही पकना, पीनस (पुराना जुकाम) स्वरभङ्ग, कासश्वास इत्यादि रोग भी होने नहीं पाते, मुखका वर्ण लाल होता है तथा कान्ति भी बढ़ती है।

(३) उषःपान—प्रातः उठ करके एक गिलास जल को पीना भी नेत्रोंके लिए हितकर है। यह जल रात्रि को ही अपने पास रखना चाहिये तथा प्रातः सर्वप्रथम इसे ही पीना चाहिये। इसके अभ्याससे मनुष्य विबन्ध इत्यादि अन्य कई रोगोंसे भी बचता है। जो लोग विबन्ध (कब्जी) प्रकृति वाले हों उनको इसका अभ्यास अवश्य करना चाहिए।

(४) घृतपान—शुद्ध गोघृतको पीनेसे भी नेत्रोंको लाभ होता है। यह घृतपान किसी भी पदार्थके साथ नहीं होना चाहिए। प्रतिदिन एक छटांक घृतको पीने से नेत्र तथा अन्य कई अवयवोंकी पुष्टि होती है। जो केवल घृतका पान करनेमें रुचि न रखते हों उन्हें चाहिये कि वे प्रथम दूधके साथ इसको पीनेका अभ्यास करें।

(५) रुधिरस्रावण—वसन्त या शरदृऋतुओंमें यदि रुधिरका स्रावण किया जाय तो उससे नेत्रोंके रोग नहीं होने पाते। यह रुधिर कर्णमूलीय रक्तवाहि नियों (Mastoid & auricular branches of the occiputul Artery) से या प्रपाद वाहिनियों (Arteries of the dorsum of the foot) से निकालना अच्छा होता है। यद्यपि यह प्रक्रिया आधुनिक समयमें उतनी आदरणीय नहीं है, तथापि भारतमें प्राचीनकालमें इसका अधिक प्रचार था और वर्तमान समयमें भी भारतके कई प्रान्तोंमें इसके विशेषज्ञ पाये जाते हैं।

(६) यदि मनुष्य प्रतिदिन किसी एकान्त और निरावृत स्थानमें सिद्धासनसे बैठकर किसी दूर अविचाली प्राकृतिक पर्वतादिकी ओर निश्चल भाव से न्यूनसे न्यून १५ मि० २० मिनट तक देखता रहे

तो इस अभ्यासले दृष्टि बढ़ती है तथा साथ ही मन को एकाग्र करने की शक्ति भी बढ़ती है। यह अभ्यास यद्यपि मनको स्थिर रखनेके लिए विशेषरूपसे अभिप्रेत है तथापि इससे दृष्टिका बल भी बढ़ता है।

(७) शीतलीकरण प्राणायाम— प्रातः सायं स्वच्छ स्थानमें बैठ कर प्राणायाम करे। इसमें जिह्वाको बाहिर निकाल कर नलिकाकार बनाना चाहिये। फिर उसी नलिकाकार जिह्वासे लम्बे लम्बे और गहरे सांस लेवें और उन सांसोंको नासासे छोड़ना चाहिये। इस प्रक्रियाको प्रायः १० से ३० मिनट तक बढ़ाते जावें। इससे नेत्र भी स्वस्थ होते हैं तथा चर्मकी विकृतियाँ भी नहीं होने पातीं।

(८) त्रिफला (प्रयोग १ छटांक)— त्रिफलाको अधकुटी करके रातको किसी स्वच्छ ताम्र पात्रमें १ सेर पानीमें भिगो कर रखें। उस पात्रको चन्द्र-किरणोंमें रखें, यदि शीत समय हो अथवा आकाश मेघोंसे आवृत हो तो कमरेमें ढक कर रखें। प्रातः इस जलसे नेत्रोंको धोलें और कुछ पानी पी लें। इस प्रकार प्रतिदिन करनेसे कदापि भी नेत्ररोगोंके होने की सम्भावना नहीं रहती।

(९) अञ्जनप्रयोग— उत्तम प्रकारके अञ्जनोंका प्रयोग करना भी नेत्रोंके लिये लाभदायक होता है क्योंकि कहा भी है—

"यथा हि कनकादीनां मणीनां विविधात्मनाम्।
धौतानां निर्मला शुद्धिस्तैलचैलकचादिभिः॥
एवं नेत्रेषु मर्त्यानामञ्जनाश्च्योतनादिभिः।
दृष्टिर्निराकुला भाति निर्मले नभसीन्दुवत्॥"

जिस प्रकार तैल, वस्त्र तथा बाल ब्रुश इत्यादिसे सुवर्ण आदि धातु, एवं अनेक प्रकारके रत्नोंको शुद्ध करके निर्मल बनाया जाता है उसी प्रकार अञ्जन और आश्च्योतन (नेत्रोंके दूषित जलको निकालना) इत्यादि क्रियाओंसे दृष्टि तीव्र और स्वच्छ होकर इस प्रकार प्रकाशित होती है जिस प्रकार निर्मल आकाश में चन्द्रमा।

अञ्जनोंका प्रयोग प्रतिदिन करना उचित नहीं अपितु सप्ताह या पक्षमें एक बार। अञ्जन सदा रात्रि को ही लगाना अच्छा होता है। अञ्जनको रजत या स्वर्णशलाकासे लगाना अधिक गुणकर होता है।

ऐनकके सम्बन्धमें

नेत्र रोगोंका अस्तित्व आदिकालसे ही रहा है, परन्तु 'ऐनक' का नाम आयुर्वेदमें कहीं भी नहीं आया है। इससे यह प्रतीत होता है कि प्राचीन समयमें इसका प्रयोग नहीं होता था। जन्मोत्तर विकृतिके कारण जब नेत्रोंकी दृष्टि मन्द पड़ती है तब ऐनकका प्रयोग करना लाभकारी ही नहीं अपितु आवश्यक भी होता है, जैसे काँच रोगके कारण विकृत बने हुए नेत्रकायका शस्त्रक्रियासे निकालनेके बाद। इसके अतिरिक्त कई विद्वानोंका कथन है कि नेत्रज्योतिकी रक्षाके लिए ऐनकका प्रयोग करना लाभदायक है। परन्तु बहुतसे विद्वान् इसके विरुद्ध भी हैं। यदि कोई यह समझे कि ऐनक लगा कर वह अपनी दृष्टि की रक्षा कर सकता है तो यह उसका भ्रम होगा। ऐनक लगा कर भी दृष्टिमन्द होती रहती है, जिससे समयान्तरमें पूर्वापेक्षया उच्चबलवाला (High power) चश्मा लगाना पड़ता है। ऐनकका सबसे बड़ा दोष यह है कि मनुष्य बादमें इसका आदी बन जाता है। यदि प्रकृति ऐनकको नेत्रोंके लिए आवश्यक समझती तो वह ऐनकके साथ ही मनुष्यको क्यों नहीं उत्पन्न करती? हाँ, यह बात अवश्य है कि यदि मनुष्य अपनी आलस्यप्रियता या विलासप्रियताके कारण उपर्युक्त नियमोंसे अपनी दृष्टिशक्ति स्थिर और तीक्ष्ण करनेका प्रयत्न न करे या इस प्रकार करनेमें उसे भार प्रतीत हो तो उसके लिए फिर ऐनक ही नेत्रोंका सहायक बन सकता है। परन्तु मेरा तथा कई अन्य विद्वानोंका यह अनुभव है कि उपरोक्त आहार, विहार तथा युक्तिशीर्षकोंमें जिन साधनोंका उल्लेख किया गया है उनके नियमित, उचित और निरन्तर आचरणसे अवश्य ही मनुष्यकी दृष्टि बलयुक्त, तीक्ष्ण और विकृतिरहित हो सकती है। [शेष पृ० ८८ पर]

तुलसीके अद्भुत गुण

अनेक रोगों पर तुलसीका चमत्कारी प्रभाव

तुलसीको सब कोई जानते हैं और इसका पौधा घरोंमें बहुत अधिक मात्रामें लगाया जाता है। इसका पौधा प्रायः दो ढाई हाथ ऊंचा होता है। इसकी कई जातियां हैं। इसकी परीक्षा पत्तोंसे होती है, किन्तु श्वेत और काली (श्याम) दो ही प्रकारकी तुलसी इस देशमें व्यवहारमें आती है। श्वेतको राम-तुलसी, कालीको श्याम या कृष्ण तुलसी कहकर पुकारते हैं। रामतुलसीकी अपेक्षा कृष्णतुलसीमें अधिक गुण है।

यह उष्ण, कफघ्न, तीखी, दन्त पीड़ानाशक, हृदयको लाभदायक, अग्निदीपक, वायु, श्वासकास, पेटके कृमि, कै, शूल, कुष्ट विष, मूत्रकृच्छ्र, रक्तदोष, ज्वर, पसलियों की पीड़ा, कफ और वात नाशक है। आरोग्यवर्धक होती है।

(१) तुलसीकी चाय—तुलसीके सूखे पत्ते, आम के सूखे पत्ते, पीपलके सूखे पत्ते, मजीठ, लौंग, काली मिरच, इलायची इन सबोंको समान मिलाकर मोटा-मोटा कूट पानीमें उबालकर उसमें शक्कर (खाण्ड) दूध मिलाकर नित्य सेवन करें। यह चाय स्वादमें अत्यन्त स्वादिष्ट होने व अमीरोंको फायदेमन्द गरीबों को स्वास्थ्यप्रद व कम कीमती है। इसका नाम अमीरी चाय है। रक्त-विकार एवं वात-पित्तको दूर करती है।

कुछ औषधि रूपमें तुलसी प्रयोगका क्रमशः उल्लेख करते हैं।

(२) शीत ज्वर—पर तुलसीपत्र और काली मिर्च एक एक तोला, करेलेके पत्ते दो तोला, कुटकी चार तोला, मिर्च और कुटकीको पीसकर पत्थरमें खरल कर डाले। फिर उसमें तुलसी और करेलेके ताजे पत्तोंको डालकर खूब घोंटो। मटरके बराबर गोली बना लो। दो-दो गोली ज्वर चढ़नेके पूर्व प्रातः तथा सायंकाल शीतल जलके साथ सेवन करें। इसके सेवनसे मलेरिया आदि ठहरकर आने वाले ज्वर विदा हो जाते हैं। दस्त भी साफ हो जाता है।

(३) विषम ज्वर—पर तुलसीके पत्तोंको एक तोले रसमें एक चुटकी काली मिर्चका चूर्ण डालकर शहद के साथ चाटे या तुलसीके १० पत्तोंमें काली मिर्च का चूर्ण डालकर गुड़के साथ गोली बनाकर खावें।

(४) आगन्तुक ज्वर—तुलसीके पत्ते सोंठ और मिश्रीका काढ़ा बनाकर पीयें।

(५) तृषापर—तुलस्यादि बनाय तुलसीकी मंजरी, सोंठ, पीपर, द्राक्ष, लवङ्ग, खानेके पानका देठ, दाल चीनी और खारीक (छुहारा) एक एक तोला और आधा तोला लोहासवका क्वाथ (काढ़ा) बनाकर देने से दाद, ग्लानि और त्रिदोषका नाश होता है।

(६) पित्तदाहपर—आधा सेर पानीमें एक तोला तुलसीके पत्ते डालकर खूब उबल जाने पर चीनी डालकर पीना चाहिये।

(७) पसली दर्द पर—तुलसीके पत्तोंका रस आधा तोला और अदरखका रस आधा तोला असली पोहकर मूलका चूर्ण तीन माशा सबको मिलाकर गरम २ लेप करनेसे सर्दीसे होने वाला पसलीका दर्द ठीक हो जाता है।

(८) मूर्छापर—तुलसीके पत्तोके रसमें थोड़ा सेंधा नोन मिलाकर नाकमें डालनेसे मूर्छा तत्काल दूर हो जाती है।

(९) कर्णरोग पर—तुलसी और मकाके पत्तोंका रस एकत्रकर पांच दिन तक कानमें डालना चाहिये।

(१०) पीनस रोगपर—तुलसीके रसकी या सूखे पत्तोंकी सूंघनी बनाकर सूंघना चाहिये।

(११) प्रमेह पर—तुलसीके जड़के चूर्णको रात्रिमें पानीमें डालकर रखदें। प्रातः उस पानीको छानकर पीयें। सात दिन तक पीनेसे प्रमेह अच्छा हो जाता है।

(१२) रतौंधी पर—जिसे रातमें बिल्कुल न दिखता हो तुलसीके पत्तोंका रस दिनमें कई बार आंखोंमें डाले।

(१३) दन्त रोगपर—तुलसीके सूखे पत्ते १ तोला, जटामांशी एक माशा, जली हुई सुपारी ६ माशा, रुमी मस्तगी एक तोला, बादामके छिलकोंकी भस्म १ तोला, इलायची ३ माशा इन सब चीजोंको महीन पीसकर कपड़छन कर लें। यह एक अच्छा दन्तमंजन है, जिससे दांत उज्ज्वल और निरोग रहते हैं।

(१४) बालकोंके ज्वरपर—तुलसीके पत्ते, बबूल की कोपलके पत्ते, अजवाइन देशी एक माशा सबको २॥ तोले जलमें पकावे। जब वह चौथाई रह जाय तब मिश्री डालकर पिलावें।

(१५) बालकोंके पेट फूलनेपर तुलसीके पत्तोंका रस एक माशे से ६ माशे तक (अवस्थानुसार) कुछ गरमकर पिलानेसे दस्त साफ होकर पेट ठीक हो जाता है।

(१६) बालकोंके कर्ण शूलपर—तुलसीके पत्तोंका रस कानमें डालें।

(१७) बालकोंके श्वासपर—एक से ३ माशे तक तुलसीके रसमें मधु मिलाकर चटानेसे श्वास ठीक हो जाता है।

(१८) अग्निमांद्यपर—तुलसीके पत्तोंके रसमें पांच काली मिर्चका चूर्ण मिलाकर मधुके साथ लेवें।

(१९) मूत्रदाहपर—गरमीके दिनोंमें अधिक धूप में चलनेसे मूत्र पीला पड़ जाता है और जलन होने लगती है। ऐसी अवस्थामें दूध और पानी सम भाग लेकर दोनों का आठवां हिस्सा तुलसीके रसमें मिला कर पीना चाहिए।

(२०) रक्तातिसार—तुलसी के बीज पाव तो० रात्रि में पांच तो० पानी में भिगोकर रख देवे और प्रातः छानकर पीवे।

(२१) अरुचि पर—तुलसीका रस, पीपल, मधुमें मिलाकर चाटें।

(२२) कफ युक्त खांसी पर तुलसीकी ताजा पत्ती दो तो०, गुलाबी फिटकरीकी खील चार तो० दोनोंको पत्थरके खरलमें खूब घोंटकर काली मिरचके बराबर गोली बनाकर छायामें सुखा ले। मात्रा—एक एक गोली पानमें रखकर या मधुके साथ प्रातःसायं दोनों समय लें।

(२३) श्वेत कुष्ठ पर—तुलसीके मूलकी मिट्टी तथा पत्ते एकत्र मिलाकर खूब महीन पीसकर लगावें।

(२४) कृमि पर—घरमें मच्छर आदि कृमिका नाश करनेके लिए रामतुलसीके पत्तोंका क्वाथ (काढ़ा) बना घरमें छिड़कना चाहिये।

(२५) गजकर्ण कुष्ठ पर—घी, कलीका चूना, तुलसीके पत्तोंका रस तीनों चीजें कांसेके पात्रमें एकत्रकर लगावें।

(२६) जख्म पर—तुलसीके पत्ते पीसकर लगावें।

(२७) बिच्छू काटने पर—बिच्छू आदि डंकसे काटने वाले अनेक जन्तुओंके विष पर तुलसीके पत्तों का रस लगानेसे शीघ्र आराम होता है।

(२८) स्त्री-बन्ध्यत्व पर—तुलसीके बीज आधा तो० पानीके साथ पीसकर मासिक-धर्मके समय तीन दिन लेनेसे गर्भ रहता है।

(२९) प्रदर पर—रामातुलसीका रस दो तोला चावलके माण्डके साथ सात दिन देनेसे प्रदर ठीक होता है। पथ्य—दूध भात या घी भात।

(३०) स्त्रियोंका दूध शुद्ध होनेके लिए—तुलसी और मक्काके पत्तोंका दो-दो तोला रस, अश्वगन्धके पत्तोंका रस एक तोला, शहदके साथ सात दिन तक खाना चाहिये।

(३१) बालकोंके कै अतिसार पर—तुलसीका रस शहदमें डालकर देनेसे लाभ होता है।

(३२) खुजली पर—तुलसीके रसकी मालिश करनेसे बहुत लाभ होता है।

(३३) चूहेके दंश-स्थान पर—तुलसीके रसमें अफीम मिलाकर मालिश करनी चाहिए। घावमें से लहू बहता हो तो उस पर तुलसीके पत्तोंकी लुगदी बनाकर रखनी चाहिये।

(३४) उन्माद-पत्तियोंके खाने और सूंघनेसे उन्मादको अत्यन्त लाभ होता है।

(३५) दांत रोग पर-इसकी पत्तियोंको महीन पीसकर खाने व लगानेसे मसूढ़े व दांत मजबूत होते हैं।

(३६) तुलसीके पौधे घरके आस-पास लगानेसे वायु शुद्ध होती है। मलेरियाका भय नहीं होता है।

(३७) तुलसीके वृक्षकी सुगन्धसे सर्प भी दूर भागते हैं।

(३८) 'तुलसीकी चाय' पीनेसे जुकाम और मलेरिया दूर होता है।

तुलसीके गुण कहाँ तक गिनावें इसमें अत्यन्त गुण है। यकृत, प्लीहा, बवासीरमें इसके खाने लगाने से लाभ होता है। सांपके काटे स्थान पर तत्काल तुलसीके पत्ते दो तोलाके अनुमानसे दस पन्द्रह काली मिर्चके साथ पिलाना चाहिए। बर्रके काटने पर भी लगाना लाभदायक है। प्लेगमें तुलसी-दलको काली मिर्च और चीनीके साथ खाने और इसकी पत्तियोंको लगानेसे शान्त होजाती है। इसके नित्य सेवन करनेसे शुद्ध रक्त उत्पन्न होता है। कुष्ठमें इसकी पत्तीको खाना व लगाना हितकर है। इसके विषयमें अधिक लिखना सोनेमें सुगन्ध देना है।

—०:०—

नेत्ररक्षाके उपाय

(पृष्ठ ८५ का शेष)

दृष्टिपरीक्षाके एक विशिष्ट पश्चिमीय विद्वान् सर स्टेफर्ड अपनी 'The Practice of Refraction' नामक पुस्तकमें लिखते हैं कि—"A man should not insist upon the constant use of spectacles which are seldom necessory after the age of forty." अर्थात् ऐनकों — जो कि प्रायः ४० वर्षकी आयुके अनन्तर लगाने आवश्यक पड़नेका निरन्तर उपयोग करनेके लिए हठ नहीं करना चाहिये।

एक जर्मन विद्वान्को मध्य एशियामें भूगर्भसे एक पुस्तक आजसे २० वर्ष पहले मिली थी। वह पुस्तक संस्कृतभाषामें एक विशेष चर्म पर लिखी हुई थी। उसमें केवल यौगिक (आसनादि) क्रियाओंसे ही नेत्रोंकी शक्तिको बढ़ानेका वर्णन किया गया है। उस विद्वानने फिर जर्मनभाषामें नेत्रोंके विषय पर ही एक पुस्तक लिखी है जिसमें उसने प्राकृतिक क्रियाओंसे ही नेत्रोंके रोगोंको दूर करना तथा नेत्रशक्तिको संरक्षण करनेके उपायोंका उल्लेख किया है।

मनुष्यकी दृष्टिमें कई प्राकृतिक विकृतियाँ होजाती हैं। जैसे— समीपदृष्टि (Myopia), दूरदृष्टि (Hypermetropia), विषमदृष्टि (Astigmatism), जरादृष्टि (Presbyopia) यह विकृतियाँ जन्मोत्तर भी हो सकती हैं। वर्तमान समाजमें इन्हीं विकृतियों से बाधित होकर लोगोंको चश्मा लगानेकी आवश्यकता पड़ती है। किन्तु हमारा अनुभवसिद्ध विश्वास है कि यदि उपर्युक्त साधनोंका तथा अन्य सदुपदिष्ट उपायोंका अनुसरण किया जाय तो मनुष्यकी दृष्टि बलवती ही नहीं होगी अपितु रुग्णदृष्टि वाले मनुष्य भी स्वस्थ तथा तीक्ष्णदृष्टिको प्राप्त कर सकते हैं। यदि इस मेरे साधारण लेखसे १० प्रतिशत भी पाठक महानुभाव लाभ उठायेंगे तो मैं उसीसे ही अपने इस उद्योगको सफल एवं कृतार्थ समझूंगा।

दुर्गा

[लेखक—श्री अवनीन्द्रकुमार जी विद्यालंकार]

"यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति॥

पूर्वीय भारतमें विशेषतः बंगालमें दुर्गाकी पूजाका बड़ा प्रचार है। यह उनका राष्ट्रिय पर्व है। दुर्गा पूजाकी तैयारी महीनों पहले आरम्भ हो जाती है। सन्ध्या समय बच्चे टोलियां बनाकर प्रति-दिन देखने जाते हैं, मण्डप कितना बन गया, मूर्ति कितनी बनी। घर-घरमें इस पूजाकी तैयारी प्रारम्भ हो जाती है, जीवन में एक नया उल्लास होता है। नए कपड़े सिलते हैं। पक्वान्न तैयार होते हैं। धान इस समय पकने वाला होता है। धान खेतोंमें लहरा रहा होता है। लहराते धानके बाल किसान के मन में एक नया उछाह और उमङ्ग उत्पन्न करते हैं। इस अवसर पर वैदिक-कालमें आश्विनकी पूर्णिमाको 'आश्वयुजी' पर्व होता था। इस दिन इन्द्रको दूध और चावल चढ़ाया जाता था। दोनों आश्विनोंके लिए स्वाहा। दोनों आश्वजोगोंके लिए स्वाहा। अश्वयुजी पूर्णिमाके लिए स्वाहा। शरद् ऋतुके लिए स्वाहा। प्रजापतिके लिए स्वाहा। उस साँवलेके लिए स्वाहा। 'आज्य' को इन शब्दोंसे बलिदान चढ़ाया जाता था। 'गाय यहाँ आवे' (ऋ० ६।२८) ऋचा पढ़ कर पुनः उसको दही और मक्खन चढ़ाया जाता था। बछड़ोंको इस रात अपनी माताके पास छोड़ दिया जाता था। इसके अनन्तर ब्राह्मण भोज होता था।

सांख्यायन द्वारा दत्त इस विधानके साथ सीता (हलके लकीरों) की पूजा भी पारस्करने लिखी है। सीता देवीका यज्ञ इस प्रकार किया जाता था—

'मैं इन्द्रकी स्त्री सीताका आवाहन करता हूँ, जिससे कि सब वैदिक और सांसारिक कार्मोंकी सिद्धि होती है। मैं जो कुछ कार्य करूं उसमें वह मुझे न छोड़े। स्वाहा।

"इस यज्ञमें मैं उस उर्वरा (उपजाऊ भूमि) का आवाहन करता हूं जोकि माला पहिने है और जो प्राणियोंको घोड़े गाय और सुख देनेमें परिश्रमके साथ सहायता करती है। वह मुझे न छोड़े। स्वाहा!" (२-१७-६)

यह वर्णन बताता है कि इन्द्र, वर्षाके देवता, और उसकी पत्नी (सीता जोकि उर्वरा है और फूलोंकी माला पहिने है) की पूजा दार्शनिक कालमें किसान धानकी फसल काटनेके पश्चात् करता था। यह प्राकृतिक पूजा, जो कृतज्ञ किसानके हृदयसे निकली थी, आज लक्ष्मी पूजा और दुर्गा पूजामें परिवर्तित हो गई है। यह रूपान्तर किस प्रकार हुआ आज यह जानना कठिन है। क्योंकि ग्यारहवीं शताब्दीके पर्वों (त्यौहारों) का वर्णन करते हुए अलबेरूनीने लिखा है कि ग्यारहवें दिन पार्वतीका त्यौहार होता था जिसमें पुजेरीको डोरा दिया जाता था और पूर्णिमाके उपरान्त पूरे पक्ष भरमें नित्य त्यौहार होते थे। कातिकमें पहले दिन बहुत से दीपक जला-कर दिवालीका त्यौहार मनाया जाता था। कहना न होगा कि दुर्गा और लक्ष्मीकी पूजा ग्यारहवीं शताब्दी के अनन्तर चली। किंतु यह अनुमान निकालना ठीक न होगा।

क्या अनार्य देवी है?

ग्यारहवीं शताब्दीसे पहले दुर्गा और लक्ष्मीकी पूजा प्रचलित थी, इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण न मिलनेसे (?) यह समझना भूल होगी कि दुर्गा अनार्यों की देवी है और उसको आर्योंने पीछेसे अपना लिया है। दुर्गाके विभिन्न रूपों और काली जैसे वीभत्स और भयावने रूपको देखकर डा० भाण्डारकर सदृश विद्वानोंका कहना है कि एक देवीके मंगल और बीभत्स रूपोंका कारण आर्य और अनार्य सभ्यताओं

के मिश्रणका फल है और पराजित और विजयी जातिके बीच मेल और सम्मिलन होनेके अनन्तर दोनोंकी आराध्य और पूज्य देवी देवताओंके मेलका यह परिणाम है। यह भी सम्भव है कि आर्य जाति ने द्रविड़ोंको पूर्णरूपसे विजय करनेके लिए उनकी देवियोंको अपने देवताओंकी पत्नीके रूपमें अंगीकार कर लिया हो। क्योंकि प्राचीन कालमें उस समय तक कोई जाति और कबीला अपनेको पराजित नहीं समझता था, जब तक कि उसके देवी देवता स्वाधीन रहते थे। जब आक्रान्ता लोग आक्रान्तके देवी व देवताको अपने देवी देवताओंके नीचे स्थापित कर देते थे तब आक्रान्त जाति समझती थी कि वह अब पराजित हो गई है और प्रतिरोध और प्रतिकारकी सीमा समाप्त हो गई है। जब देवताने आत्मसमर्पण कर दिया तब मनुष्य कैसे लड़ सकता है ? यदि यह प्रक्रिया दुर्गा और उसके सोलहों रूपोंके सम्बन्धमें हुई, तो वह वैदिक ऋचाओंके बननेसे पहले ही हुई। क्योंकि ऋग्वेदके देवीसूक्त और रात्रिसूक्त इस बात के प्रमाण हैं कि दुर्गा इससे पहले आर्योंकी देवी मानी जा चुकी थी। देवीसूक्तमें देवीके कार्योंका यशोगान किया गया है। ऋग्वेदके १० म० १२५ सूक्तके ये मन्त्र इस बातकी साक्षी हैं:—

"अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तं मां देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूमो वेशयन्तीम्॥"
"अहं सूवे पितरमस्य मूर्ध न्नाम् योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
ततो विनिष्टे भुवनातु विश्वतोमूं दयां वर्ष्मणोपस्पृशामि॥
अहमेव वात इव प्रवाम्या रममाना भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना समभूव॥

इस सूक्तमें ऋषि अमभृणाकी पुत्री वाक् मूल प्रकृतिसे अपनेको एक रूप करके, तादात्मभाव स्थापित करके उसके पराक्रमको अपना पराक्रम बताती है, जैसाकि हमने ऊपर अन्तिम मन्त्रमें देखा है।

तैतरेयआरण्यककी नारायणउपनिषदमें दुर्गाका नाम स्पष्ट रूपसे आता है। तैतरेय आरण्यक (१०-१) में सर्वोच्च शक्तिकी बार बार गायत्री जाप करके प्रार्थना की गई है। वहाँ उस शक्तिको कन्याकुमारी और दुर्गा नामसे सम्बोधित किया है। नारायण-उपनिषद (२०-२) में देवीको दुर्गा नामसे पुकारा गया है।

केनउपनिषद्में ब्रह्मविद्या भगवतीको मूर्तिमती ब्रह्मविद्या कहा गया है। हैमवती उमाका वर्णन केन उपनिषद् (३.१२) में इस प्रकार किया गया है:—

"स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम।
बहुशोभमानामुमां हैमवतीं तथाहो वाच
किमेतद्यक्षमिति।"

इससे यह स्पष्ट है कि दुर्गा वैदिककालमें आर्य देवी मानी जा चुकी थी और वह पूजित और सर्व-मान्य हो चुकी थी।

ऐतिहासिक काव्य और पुराणोंमें

दुर्गा वस्तुतः शाक्त साधकोंकी आराध्य देवी है। अब शैव भी इसको अपनी देवी मानते हैं। किन्तु इसका आध्यात्मिक रूप (जगदम्बा रूप) हमें तन्त्रोंमें मिलता है। महाभारत और पुराणोंमें हमें इसका रहस्यपूर्ण वर्णन नहीं मिलता। पुराणोंमें से कालिका, देवी, मत्स्य, बृहन्नन्दिकेश्वर, स्कन्द, ब्रह्मवैवर्त्त, मार्कण्डेय, देवी भागवत आदिमें वर्णन है और यह वर्णन शक्ति सम्प्रदायके केन्द्रके रूपमें है। ईसा से एक शताब्दी पूर्व शाक्त धर्म बहुत जोरों पर था। कालिका, देवी, बृहन्नन्दिकेश्वर और मत्स्यमें दुर्गा पूजाकी पद्धतिका वर्णन है। मत्स्यमें मट्टीकी विभिन्न रूपोंकी मूर्तियाँ बनानेका प्रकार बताया गया है। बृहन्नन्दिकेश्वर पुराण इस समय उपलब्ध नहीं है और लिंगपुराणमें विहित पूजा इस समय प्रचलित नहीं है।

अलबेरुनीसे पहले

दीखता है कि अलबेरुनी बंगाल नहीं गया था। अन्यथा वह बंगालमें मट्टीकी बनी दुर्गाकी पूजाका वर्णन अवश्य करता। क्योंकि 'चण्डी'में लिखा है कि राजा सुरथ और वैश्य समाधिने स्वर्णयुगमें मट्टीकी

बनी दुर्गाकी पूजा की थी। बंगाल के विद्वान् रघुनन्दन और श्रीनाथ आचार्य चूड़ामणिने स्मृति-सार-संग्रहमें, वाचस्पति मिश्र (मिथिला) ने कृत्या-चिन्तामणिमें, मैथिल कवि श्रीला विद्यापति ठाकुरने दुर्गाभक्त तरंगिणी में, जीमूतवाहनने दुर्गोत्सव-विवेक और शूलपाणिने दुर्गोत्सव-विवेक और वासन्ती-विवेकमें वर्तमान कालमें प्रचलित दुर्गा-पूजाका वर्णन किया है। ये सब स्मृतिकार व लेखक १४वीं और १५वीं शताब्दीमें हुए हैं, किन्तु इनसे बहुत पहले बालक और जींकाना नामक दो स्मार्त हुए हैं। इन्होंने भी दुर्गाकी पूजाका वर्णन किया है। राजा हरिवर्मदेव (११वीं शताब्दी) के सम-सामयिक भवदेव भट्टने इन दोनों स्मार्तोंका उल्लेख किया है। इसलिए मानना होगा कि न्यूनातिन्यून दसवीं शताब्दीमें वर्तमान कालमें प्रचलित दुर्गा-पूजाका रूप प्रचलित था।

किसका प्रतीक है ?

हिन्दू धर्ममें जिन देवी-देवताओंकी पूजा की जाती है, वे किसी-न-किसी ईश्वरीय व दैवीय शक्ति के प्रतीक हैं। परन्तु जहाँ उनका सार्वभौम रूप होता है, वहाँ उनका सामाजिक, राष्ट्रिय और मानवीय रूप भी होता है। हिन्दू धर्मके अन्दर प्रत्येक देवी देवता विशेष और सार्वभौमका अद्भुत मिश्रणका प्रतीक है। दुर्गा इसका अपवाद नहीं है।

दुर्गा जहाँ आद्य शक्ति है, और इस रूपकी जहाँ महिमा गाई गई है, वहाँ यह हिमालय और मेनका की कन्या उमा व पार्वतीके रूपमें दुहिता और पुत्री भी है। 'उमा' ससुरालसे इन दिनों अपने माता-पिता के घर आती है। मेनकाका मातृहृदय पुत्रीके सुख-दुःख जाननेको आकुल है। कथा है कि शिव प्रतिवर्ष उमाको चार दिनोंके लिए घर जानेकी अनुमति देते थे। शिवके सम्बन्धमें प्रसिद्ध है कि भीख आने पर उनके घर चूल्हा जलता था। ऐसी अवस्थामें मेनका के आकुल हृदयकी व्यथाकी कल्पना की जा सकती थी। माताके भावोंको व्यक्त करनेके लिए अनेक गीत प्रचलित हैं। बंगलाके ये 'आगमनी' गीत विशेष महत्व रखते हैं। उनमें से एक गीतका भाव देखिए:—

उमा कहती है कि—'माँ! कौन कहता है कि हर गरीब है ? उनका घर चांद और सूर्यसे अधिक प्रकाशमान वस्तुओंसे बना है। विवाहके पश्चात् मेरी आँख एक बार भी अंधेरेमें नहीं पड़ी है और न मैं दिन और रातमें भेद जानती हूँ।

माँ कहती है—'ऐ पर्वतेश्वर! उमा यदि कभी आई तो उसको वापस नहीं भेजूंगी। लोग चाहे जो कुछ कहें। यदि मृत्युञ्जय (शिव) उमाको बुलाने आया तो जमाईके हृदयका भी ध्यान न रखूंगी, माँ और बेटी उससे लड़ेंगी।

विवाहिता पुत्रीके सुखकी बात जब मैं कभी सुनती हूँ तो मुझे कितना अमित आनन्द होता है। जब कोई राही आकर कहता है कि उमाकीमाँ! उमा सुख से है, तो मुझे स्वर्गीय आनन्द होता है।

मेनकाके पड़ौसी उसका साथ देते हैं और कवि के शब्दोंमें वे कहती हैं:—

पर्वतेश्वरी! तेरी लड़की आई है ? तेरी लड़की, जो अन्धकारको दूर कर देती है, अपने पूर्ण सौन्दर्य के साथ आई है, उमाकी कान्ति स्वर्णके समान है, जैसे कि उसके वस्त्र और आभूषण हैं। आकाशके तारे उसकी ओर देखकर पीले पड़ गए हैं।

पुत्रीका माँसे प्रेम इन शब्दोंमें व्यक्त हुआ है:—

ऐ संसारके स्वामी शिव! जोकि अपनी जटाओं में गंगाको बसाए हुए हैं, तुमने प्रतिज्ञाकी थी कि मुझे पिताके घर जाने दोगे। कितने दिनों बाद मैं अपनी माँ के घर जाऊंगी और उससे मिलूंगी ? रात दिन वह मेरा ही ध्यान करती है, राहकी ओर प्यासे चातकके समान निहारती रहती है। माँसे हुए इतने लम्बे विछोहसे मुझे कितना दुःख होता है, उसका मैं कैसे वर्णन कर सकती हूँ।

तीन दिन बीत जाते हैं। माँ और बेटीने ये दिन खुशी-खुशीमें काटे। निमेषपात्रमें ये दिन व्यतीत हुए। चौथे दिनका उषा-काल आता है।

मेनका विलाप करने लगती है, क्या बुरा समाचार मैं सुन रही हूँ ? द्वार पर महाकाल (शाश्वत समय का प्रतीक शिव) बैठा हुआ है और उमाको बुला रहा है । पर्वतोंके राजा, तुम्हारा शरीर पत्थरका बना है, अतः तुम फूट-फूटकर रो नहीं पड़ते ! मेरी पुत्री दूसरे घरकी है, यह मैं जानती हूँ, किन्तु मुझे इससे सन्तोष नहीं होता । कैसी भाग्यकी विडम्बना है ?

मेनका आगे कहती है:— 'जय ! जाओ और कह दो मैं उमाको नहीं भेजूंगी । हरको मालूम नहीं है कि माँको कितना दुःख होता है ? मैं प्यारी उमाको हृदयमें (बन्दी) रक्खूंगी, मेरी दोनों आंखें सन्तरीका काम करेंगी । यदि हिमालय इसमें हस्तक्षेप करेगा, तो जय ! कहती हूँ कि मैं प्राण देदूंगी ।

किन्तु उमाको तो भेजना ही पड़ेगा, अतः मेनका अपने मनको समझाती है और कहती है:—

प्यारी बेटी अपनी माँको न भूलना ! वर्षके अनन्तर पुनः आना और फिर मुझे अपने चन्द्रके समान सुन्दर मुखसे 'मां कहकर पुकारना, 'पड़ोसियों'! उसके लिए मङ्गलकी प्रार्थना करो ।

यहाँ अन्तमें कवि कहता है:— 'हिमालय की रानी, हरकी पत्नी, तुम्हारी पुत्री उमा सर्वत्र है । अपने हृदयके अन्तरतम प्रदेशमें देखो और वहाँ तुम उसको सदा पाओगी ।'

हिन्दू इस प्रकार दुर्गा और आद्या शक्तिकी उसके अन्दर अपने मनोभावोंका आरोप करके पूजा करते हैं । आद्याशक्तिकी घरकी पुत्रीके रूपमें अवतारणा करके; एक ही वस्तुमें मां और पुत्रीके भावोंका दर्शन और एक वस्तुमें स्वर्ग और घरकी कल्पना अनुपम है । संसारके किसी और धर्ममें यह नहीं है । विद्वान् और अपढ़के लिए हिन्दूधर्म इस प्रकार सुगम बनाया गया है, यही हिन्दूधर्मकी एक अपूर्व विशेषता है ।

प्रभु से

[श्री० सम्पूर्णदत्त जी शर्मा मिश्र ।]

करमें धनु धारण-शक्ति नहीं, रण-कौशल हीन भये हैं सभी ।
मतिहीन हो दीन पुकारें, न दीन-दयाल विलम्ब करौ पल भी ॥
मन माँहि उठ्यौ इक सोच नयौ, जब भारत-त्राण को आओ तभी ।
बम गैससे लैस हो आना प्रभो, अबके सँग वेणु न लाना कभी ॥

ऐतिहासिक नाटक—

मिहरकुल

[लेखक— श्री डा० कैलाशनाथ जी भटनागर M. A., P. H D.]

[इस नाटकके निर्माता पंजाबके ख्यातनामा लेखक और हिन्दी संस्कृत तथा अंग्रेजी साहित्यके मर्मज्ञ विद्वान् हैं। आपकी यह हृदयग्राही मौलिक रचना इस अङ्कसे प्रारम्भ होकर 'श्रीस्वाध्याय' के आगामी प्रत्येक अङ्कोंमें निरन्तर प्रकाशित होती रहेगी। यह नाटक प्राचीन भारतके ऐतिहासिक कथानकको लेकर लिखा गया है। स्वर्गीय प्रसादजीकी रचनाओंके पश्चात् ऐसा उत्कृष्ट नाटक हिन्दीमें अभी तक नहीं आया। अपनी अप्रकाशित यह अमूल्य रचना डाक्टर साहबने 'श्रीस्वाध्याय' के लिए दी है अतः हम उनके आभारी हैं। आगे कई महत्त्वपूर्ण मनोरञ्जक अद्भुत बातें इस नाटकमें मिलेंगी। अतः पाठक इन सब अङ्कोंको सुरक्षित रक्खें और लाभ उठावें। —सम्पादक]

पहला अङ्क

पहला दृश्य

स्थान—शाकलका विशाल-पथ

समय—मध्याह्न पूर्व

[कुछ नागरिक विशालपथ पर खड़े वार्तालाप कर रहे हैं। मुखाकृतिसे वे प्रसन्न दिखाई देते हैं। दो-एकके हाथ में कमण्डलु हैं, जिससे उनका संन्यासी होना ज्ञात होता है। उनमेंसे एक वयोवृद्ध प्रतीत होता है, शेष मध्यम आयुके।]

एक नागरिक—इस सूचना पर विश्वास नहीं होता।

दूसरा नागरिक—विश्वास कैसे हो ? कल तक जो मनुष्य हिंसापथ पर चलने वाला था, आज वह अहिंसा-पथका पथिक बननेकी इच्छा रखे।

तीसरा नागरिक—चन्द्रसेन ! महात्मा सुगतका प्रताप विचित्र है, उन्होंने अंगुलीमार डाकू तथा आम्रपालि वेश्या जैसे नीच जनोंके हृदयमें ज्ञानभाव जगा दिया, फिर यह तो महाराज हैं।

चन्द्रसेन—आदित्यसेन ! तुम्हारा कहना ठीक नहीं। जितना मनुष्य ऊंचे पदको प्राप्त होता है उतना ही उसका हृदय रुद्ररूप धारण करता जाता है। एक निर्धन जिस व्यवहारको घृणाकी दृष्टिसे देखता है, वही धनी बनने पर उस व्यवहारको ठीक समझ कर उसपर चलता है, निर्धनके हृदयमें जो दयारूपी स्नेहसे दीपक जलता है, वह धनकी गर्मी हो जानेसे दयारूपी स्नेहके सूख जाने पर बुझ जाता है, और हृदयमें घोर अन्धकार छा जाता है। धनी इस प्रकार निर्धन से अधिक निर्दय, पशुसे अधिक पाशविक स्वभाव और ठगसे अधिक ठगी करने वाला होता है। क्यों कृष्णदत्त ! तुम्हारा क्या विचार है ? चुप क्यों हो।

चौथा नागरिक—हाँ, बताओ धनी संसारमें पूज्य क्यों होता है।

पाँचवाँ नागरिक—भाई मातृगुप्त ! यह तो बड़ा सरल प्रश्न है।

आदित्यसेन—कैसे ? बताओ तो, देवदत्त !

देवदत्त—यह सब लक्ष्मीदेवीका प्रताप है, उसके प्रतापवश हुआ मनुष्य यदि धोखा दे, झूठ कहे, वचन भङ्ग कर दे, मित्रद्रोह कर दे, तब भी उसे बुद्धिमान् नीतिज्ञ और दूरदर्शी आदि विशेषणों से शोभित किया जाता है। निरक्षरभट्टाचार्य भी हो तो उसे परम विद्वानोंके ऊपर रखा जाता है।

आदित्यसेन—अरे ! बात कुछ और थी, तुम किसी और ओर खींच ले गये हो।

देवदत्त—नहीं भाई मेरे कहने का भी लक्ष्य वही है जो तुम्हारा है। ध्यानसे सुनो। जब धनीकी यह बात है तो राजा महाराजाका क्या कहना ? वह मनुष्यको जीवित भी जला दें तो यही कहा जायगा कि बेचारा बड़ा दुःखी था। भगवान्‌ने सुन ली और शीघ्र उसके दुःखका अन्त कर दिया, दुःखी हुआ मनुष्य आत्मघात भी तो कर लेता है।

मातृगुप्त—यह तो वही बात हुई जो आमिष भोजी कहते हैं।

चन्द्रसेन—वे क्या कहते हैं ?

मातृगुप्त—वे कहते हैं कि हम मांस इसलिए खाते हैं कि नीच योनिमें पड़ा हुआ जीव मुक्त होकर दूसरी उच्च योनिको प्राप्त होता है और इस प्रकार शीघ्र ८४ लाख योनिका चक्र पूरा करके मनुष्य योनिको प्राप्त होता है।

कृष्णदत्त—इस प्रकार तो आमिष भोजी बड़े परोपकारी सिद्ध हुए।

मातृगुप्त—सिद्ध क्या होते हैं, बनते हैं। पाखण्ड रचते हैं। यदि इतनी परोपकारकी उमङ्ग है तो राजा शिविके समान कभी अपनी जीवन-लीला समाप्त करनेकी भी तो चेष्टा करें। ऐसा करने पर वे भी तो मनुष्यत्वसे मुक्त होकर देवत्वको पा सकते हैं।

आदित्यसेन—वे लोग परोपकारको परोपकार तब समझते हैं जब अपने शरीर अथवा अपनी किसी वस्तु पर आंच आये बिना किसीका काम कर दें। परोपकार पर अर्थात् दूसरेके सहयोग तथा धन आदिसे जा उपकार किया जाय उनके लिए वह परोपकार है।

देवदत्त—तुम मेरी बात पूरी न होने दोगे।

चन्द्रसेन—(हंसकर) अरे ? तुम्हारी बात बीचमें ही रह गई, अच्छा, कहो।

देवदत्त—मैं कह रहा था कि, राजा महाराजा द्वारा किया गया पाप भी पुण्य बन जाता है। इसीलिए आप लोग हूण राज 'मिहिर-कुल'के कामों पर आँख मून्दकर उसे दया भावसे परिपूर्ण हुआ कह रहे हो।

चन्द्रसेन—भाई तुम्हारा कहना भी ठीक है। परन्तु महाराजका हृदय किसी विशेष कारणसे दया—भावसे ओत-प्रोत हुआ है।

कृष्णदत्त—वह कारण क्या है ?

चन्द्रसेन—महाराजने एक दिन एक मछली पकड़ी, मछलीके पेटमेंसे बच्चेकी अंगुली निकली, अंगुली पर अंगूठी थी, अंगूठी पर नाम लिखा था।

मातृगुप्त—नाम ? किसका था ?

चन्द्रसेन—नाम कोषाध्यक्षके छोटे लड़केका था। जो दो-एक दिन पहिले मरा था। किसीको मालूम न था कि वह इसी तालाबमें गिर गया था।

आदिसेन—इसका महाराजसे क्या सम्बन्ध ?

चन्द्रसेन—सुनो तो, बीचमें बात काट देते हो, समझ क्या आए।

आदित्यसेन—ओ हो ? आए बड़ी समझ वाले, एक बात किसीसे सुन ली तो बडे बुद्धिमान् बन गए।

चन्द्रसेन—चिढ़ते क्यों हो ? मत सुनो।

मातृगुप्त—अरे ! झगड़नेकी कोई बातभी है। हटाओ इस झखझखको (दूसरे नागरिकसे) हाँ कहो फिर क्या हुआ ?

चन्द्रसेन—महाराजका उस बालकसे बहुत प्रेम था, इस घटनासे उनके हृदयमें आमिष भोजन पर घृणा होगई।

कृष्णदत्त—घृणाकी क्या बात ? यह तो संसारका चक्र है। कीड़े मकौड़ोंको मुर्गी खा जाती है, मुर्गीको बिल्ली खा जाती है, बिल्लीको कुत्ता मार गिराता है। कुत्तेको भेड़िया खा जाता है, भेड़िये को......

देवदत्त—सुन लिया तुम्हारा चक्र, बस करो, (दूसरे नागरिकसे) हाँ, कहो पूरी बात कहो।

चन्द्रसेन—महाराजने कहा कि हमारे प्रियजनोंको खा कर ये जीव बढ़ते हैं। उन्हें खानेसे हमभी एक प्रकारसे अपने प्रियजनोंको खाने वाले बनते हैं, ये अखाद्य हैं।

मातृगुप्त–महाराजका विचार तो ठीक है। परन्तु यह क्षणिक आवेशमें चिरस्थायी न रहेगा।
चन्द्रसेन–इस समय तो उनके हृदय पर तीव्र प्रभाव दिखाई देता है।
आदित्यसेन–वह कैसे ?
चन्द्रसेन–उन्होंने बौद्ध-संघारामसे किसी योग्य उपदेशकके लिए कहा है।
मातृगुप्त–अच्छा, यहाँ तक प्रभाव होचुका है।
देवदत्त–फिर तो कुछ नया रङ्ग दिखाई देनेकी आशा हो सकती है।
कृष्णदत्त–फिर तो सूचना विश्वस्त जान पड़ती है।
(सहसा एक हूण सैनिकका प्रवेश, पिछले कुछ वाक्य सुननेसे संदिग्ध रूपसे)
सैनिक–यहाँ क्या षड्यन्त्र रचा जारहा है ?
मातृगुप्त–षड्यन्त्र क्या होता है ?
सैनिक–तुम वास्तवमें षड्यन्त्री जान पड़ते हो।
मातृगुप्त–हम तो षड्यन्त्र ही नहीं जानते हैं, षड्यन्त्री क्या जानें।
देवदत्त–महाशय ! पहिले तो हम पाँच थे तो पंचतन्त्र हो सकते थे, षड्यन्त्र तो आपके आनेसे हुए।
सैनिक–(चिढ़ कर) क्या कहते हो ?
देवदत्त–मैं यही कहता हूँ कि हम पांच, भला षड्यन्त्र कैसे हो सकते हैं ? षड्यन्त्रके लिए छै पुरुष चाहिएँ, सो छटे-पुरुषका स्थान आपने ही लिया है। अब आप चाहें षड्यन्त्री कहें अथवा सप्तयंत्री।
सैनिक–(रोषके साथ) आपकी बोलचालसे मेरा सन्देह दृढ़ हो रहा है। आप सचमुच बड़े मन चले दिखाई देते हैं और आपसे राज्यकी········ (रुककर) हाँ, आपके नाम क्या २ हैं ?
चन्द्रदत्त–मेरा नाम ? मैं अपने आपको "मैं" कहता हूँ। इसको (आदित्य सेनकी ओर संकेत करके) तुम।
सैनिक–(सक्रोध) तुम सब उपद्रवी दिखाई देते हो।
मातृगुप्त–उपद्रवी ? बुद्धाय नमः ! बुद्धाय नमः !!
आदित्यसेन—महाशय ! हम शान्तिप्रिय हैं। हम पर आपका सन्देह व्यर्थ है। बुद्धाय नमः ! बुद्धाय नमः !!
(सब 'बुद्धाय नमः ! बुद्धाय नमः !! कहते हैं)
सैनिक—आप सब बौद्ध हैं ?
सब—हां।
सैनिक—तो आपका कहना ठीक होगा। सुना है महाराजको भी बौद्धमत ने खींच लिया है। आप अवश्य शान्त-स्वभाव होंगे।
(सब पुनः कहते हैं बुद्धाय नमः ! बुद्धाय नमः !!
❀ सैनिक का एक ओर प्रस्थान ❀
देवदत्त—हूण सैनिकोंने तो नाकमें दम कर रक्खा है। जरा कहीं चार-पांच लोग इकट्ठे हुए तो लगे तंग करने।
(एक ओर से कोलाहल सुनाई देता है)
मातृगुप्त—(उधर देखकर) अरे भागो हाथी भागता आ रहा है। (हाथीके भागनेसे उसके गलेमें लटक रहे घण्टोंका तीव्र शब्द सुनाई देता है। सब लम्बे होते हैं।)

(पट परिवर्तन)

❀ दूसरा दृश्य ❀

स्थान—शाकल का बौद्ध-संघाराम
समय—सायंकाल

(संघारामके उच्च अधिकारी किसी महत्त्वपूर्ण विषय पर विचार कर रहे हैं। इनके मुख पर हर्ष रेखाके साथ-साथ चिन्ताकी गम्भीरता दिखाई देती है)।
एक अधिकारी—मैं तो उन्हें उपदेश देने का कार्य नहीं कर सकता।
दूसरा अधिकारी—भाई ! देखो, यह अवसर हठका नहीं है। राजगुरु बननेसे तुम बौद्धधर्मकी बहुत सेवा कर सकोगे।
तीसरा अधिकारी—ऐसा अवसर सौभाग्यसे मिलता है, इसका लाभ उठाना चाहिए।
पहला अधिकारी—मुझसे राजसेवा न हो सकेगी।
चौथा अधिकारी—यह राजसेवा करना नहीं करन राजगुरु बनना है!

पहला अधिकारी—मैं जानता हूँ राजगुरु पदका क्या क्या महत्त्व होता है।

तीसरा अधिकारी—यह तो सब जानते हैं कि राजगुरु पद बड़े गौरवका स्थान होता है।

पहला अधिकारी—क्या आप धन-वैभवको गौरवमय समझते हैं? हम संसारसे विरक्त पुरुषोंके लिए यह किसी महत्त्व की बात नहीं। राजा महाराजा लोग धन द्वारा मान भंजन करते हैं, न कि मान-वर्धन। वे समझते हैं कि अपमान और तिरस्कार का बदला धन से उठ जाता है। मैं स्वर्ग-ज्योत्स्ना को आत्म संयम तथा तपोबल द्वारा प्राप्त ज्ञान आलोकके आगे तुच्छ समझता हूँ। क्षणभंगुर समझता हूँ।

चौथा अधिकारी—ऐसा तो हम सभी समझते हैं। परन्तु तब भी आपको आग्रहपूर्वक कहा जाता है, इसमें विशेष कारण है। आपका उपदेश देने का ढंग अपूर्व है। सूक्ष्मसे सूक्ष्म तर्कको आप मूढ़मतिको भी समझा देते हैं। आपने धर्मके गहन विषयका अगाध अध्ययन किया है। अतएव आप ही इस पदके लिये उपयुक्त हैं।

दूसरा अधिकारी—मेरा भी यही विचार है।

पहला अधिकारी—यदि आपकी यह बात मान भी ली जाय कि मैं सूक्ष्म तथा गूढ़ विषयको भी मूढ़मतिको समझा सकता हूँ, तब भी मेरी वहाँ आवश्यकता नहीं होगी, महाराज चतुर हैं, निपुण हैं, उन्हें तो साधारण बुद्धि वाला भी धर्मविषयमें अभ्यस्त करा सकेगा। (कुछ रुक कर) यदि आप ही इस कार्य को अपने ऊपर लें, तो बहुत ही ठीक होगा।

दूसरा अधिकारी—मैं अपने आपको इस कार्यके लिए योग्य नहीं समझता, महाराज हममें से सर्वोत्कृष्ट व्यक्तिकी इच्छा करते हैं। अतएव वैसा ही प्रबन्ध होना चाहिये, और उस प्रबन्ध में आप ठीक जचते हैं।

तीसरा अधिकारी—क्यों, आप अपने आपको अयोग्य किस प्रकार समझते हैं?

चौथा अधिकारी—यह भी टालना चाहते हैं।

दूसरा अधिकारी—टालनेकी बात नहीं, सचमुच कोई विशेष कारण है।

(सब मुस्कुराते हैं)

चौथा अधिकारी—(तीसरे अधिकारीकी ओर संकेत करके) तो आप ही राजगुरु पद स्वीकार करके झगड़ा निपटाइये।

दूसरा अधिकारी—हां, इन्हें महाराजके पास भेज दो।

तीसरा अधिकारी—भाई! मैं बड़ा विचित्र जीव हूं। मैं भला राजा लोगोंसे वार्तालापका ढंग क्या जानूं। मुझे भेजकर कहीं अनर्थ न हो जाये।

पहला अधिकारी—अच्छा विचित्र जीवजी! महाराज भी तो साधारण जीव नहीं चाहते, वे भी कोई विचित्र जीव ही चाहते हैं।

दूसरा अधिकारी—वास्तविक कारण तो मैं यह समझता हूँ कि अपने स्वाध्याय तथा तपको कोई कम नहीं करना चाहता है।

चौथा अधिकारी—बौद्धमतके प्रचारके लिए अपने निजी स्वाध्याय वा तपमें हमें कुछ न कुछ ठेस तो अवश्य सहन करनी पड़ेगी।

पहला अधिकारी—ठेसकी कोई बात नहीं। क्या भगवान् (बुद्ध) गत कई राजाओंके गुरु न थे?

तीसरा अधिकारी—मुझसे यह न होगा। (रुक कर) महाराजके घरमें ही एक ऐसा व्यक्ति है कि जो यह काम कर सकता है।

पहला अधिकारी—(साश्चर्य) कौन है वह?

तीसरा अधिकारी—महाराजका अपना ही सेवक किंकिण।

दूसरा अधिकारी—हाँ, है तो वह धर्म-विषयक मर्ममें निपुण।

चौथा अधिकारी—रहेगा तो वह ठीक, परन्तु एक बात विचारणीय है।

तीसरा अधिकारी—क्या?

चौथा अधिकारी—सेवक होनेके नाते महाराजको वह कदाचित् स्वीकृत न हो।

दूसरा अधिकारी—नहीं, यह कुछ बात नहीं है। धर्म-मर्ममें निपुण कोई भी हो उसे सब शीश झुकाते हैं। एक बात और भी ध्यान रखने योग्य है। किंकिण तो सदा महाराजके पास रहता है, अतएव जब महाराजको अवसर होगा वह उनकी धर्मजिज्ञासाको तृप्त करनेके लिए उपस्थित हो जायगा। इससे महाराजको बहुत सुविधा रहेगी।

पहला अधिकारी—और उसके विषयमें मान-अपमान की बात न उठेगी।

तीसरा अधिकारी—तो वही निश्चित हुआ समझिए।

चौथा अधिकारी—मुझे कुछ आपत्ति नहीं। मुझे जो बात खटकती थी, मैंने कह दी।

(कुछ शब्द सुनाई देता है।)

पहला अधिकारी—ओह! बड़ा विलम्ब हो गया। सब लोग पूजाके लिए एकत्र होने लग गये हैं। उठो, चलते हैं।

सब—(खड़े होकर) चलो, नमो बुद्धाय! नमो बुद्धाय!! [प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

❊ तीसरा दृश्य ❊

स्थान—मिहिरकुलका विशाल भवन

समय—अपराह्न

(मिहिरकुल सुसज्जित चौकी पर बैठा है। दाहिनी ओर कोषाध्यक्ष बैठा है। सामने एक यवनिका नृत्य कर रही है)।

अनूठा प्रेम का व्याहार।
प्रेम किए नर पर बस होवे,
पर पै हो निज अधिकार,
अनूठा प्रेम का व्याहार।
प्रेम है वशीकरण अपार,
प्रेम-मंत्र जगदाधार होवे,
प्रेमसे फूलत फूल हजार,
अनूठा प्रेम का व्याहार।
प्रेम ही से शिला पिघलत,
बहती नदी-नद की धार,
देव-वृन्द पृथ्वी पै उतरत,
नर-पुंगव चढ़त सुर-द्वार।
अनूठा प्रेम का व्याहार।
प्रेम-गीत गूंजे नभ में,
प्रेम किरण छाई संसार
प्रेमी बनें हम अब सारे,
प्रेम ही जगतका सार,
अनूठा प्रेमका व्याहार।

(द्वारपालका प्रवेश)

द्वारपाल—(साभिवादन- धीरेसे) महाराज! संघाराम से एक भिक्षु आया है।

मिहिरकुल—उसे सहर्ष अभी यहाँ भेज दो।

(द्वारपालका प्रस्थान)

मिहिरकुल—(यवनीकी ओर संकेत करके) सुभगे! अब हम तुम्हारे कला कौशल देखकर प्रसन्न हुए। (कोषाध्यक्षसे) इसे सहस्र मुद्रा देकर विदा करो।

कोषाध्यक्ष—जो आज्ञा।

(यवनी तथा कोषाध्यक्षका प्रस्थान)

मिहिरकुल—महात्मा बुद्धने कैसा अच्छा मत चलाया है! ज्यों ज्यों मैं इसका अध्ययन करता हूँ त्यों त्यों मैं उधर खिंचता जाता हूँ। उनके मतानुसार मनुष्य प्रत्येक प्राणीसे प्रेम करता हुआ विश्वप्रेम में लीन होकर अन्तमें निर्वाण पदको प्राप्त करता है।

(भिक्षुकका प्रवेश—नमो बुद्धाय आदिके पश्चात्—)

मिहिरकुल—स्थविर महोदय सकुशल हैं।

भिक्षुक—जी हाँ सानन्द हैं। आपके लिये एक सन्देश भेजा है।

मिहिरकुल—कहिए क्या आदेश है?

भिक्षु—महाराजने धर्म-जिज्ञासाकी तृप्तिके लिए किसी भिक्षुकी इच्छा की थी।

मिहिरकुल—(सहर्ष) हाँ, किस भिक्षु महानुभावको भेजेंगे? क्या आप ही हैं?

भिक्षु—नहीं महाराज! मैं तो केवल सन्देश लेकर आया हूँ। स्थविरजीने कहा है कि यदि आप किंकिण द्वारा अपने धर्म-विषयक सन्देहोंकी

शान्ति कर सकें तो आपको बहुत सुविधा होगी।

मिहिरकुल—किंकिए ? मेरा सेवक ?

भिक्षु—जी हाँ, वह धर्म-मर्मका अच्छा ज्ञाता है।....

मिहिरकुल—बस, बौद्ध धर्मका यही प्रताप है ? किंकिएसे बढ़कर कोई और धर्मोपदेशक नहीं ?

भिक्षु—महाराज ! यह बात नहीं। धर्मोपदेशक तो एक से एक बढ़कर हैं। महात्मा सुगतके धर्मकी दिव्य-ज्योति कई भिक्षुओंके हृदयोंको आलोकित कर रही है।

मिहिरकुल—तो ऐसे धर्मद्रष्टाओंके होते हुए किंकिएको मुझे धर्मोपदेश देनेके लिए नियत कर संघने मेरा घोर अपमान किया है। बौद्ध-धर्मके प्रेमीको शत्रु बना लिया है।

भिक्षु—(भयपूर्वक) महाराज शान्त हूजिए। स्थविरजी ने केवल सुविधाका ध्यान रखते हुए ऐसा किया है।

मिहिरकुल—इसमें सुविधा अथवा असुविधा कैसी ? जो भिक्षु मेरे पास धार्मोपदेशके रूपमें आता, उसे किसी प्रकारकी असुविधा न होती, मैं भली प्रकार जानता हूँ कि मैं विजातीय हूँ, ऐसा विचार कर स्थविरने किसी कुलीन भिक्षुको मेरे पास नहीं भेजा होगा।

भिक्षु—(दीन भावसे) महाराज ! आप कैसे-कैसे विचार मनमें ला रहे हैं। आपको कदाचित् विदित नहीं कि बौद्ध-धर्ममें जात-पांतका पचड़ा नहीं, हमारी दृष्टिमें तो सब मनुष्य एक हैं। उच्च नीचका भेद भाव नहीं, अन्यथा परस्पर भ्रातृ भाव सम्भव नहीं हो सकता, विश्व-प्रेम तो बहुत दूर रह जाता है।

मिहिरकुल—यह सब ढोंग है। मैं वास्तविकताको समझता हूँ। आप अपने स्थविरसे जाकर कह दें कि मेरा अपमान किया गया है। इसका फल शीघ्र मिल जायगा।

भिक्षु—महाराज ! रुष्ट न हों।

मिहिरकुल—(आवेगमें आकर) भिक्षु ! मेरा रोष तुमने देखा नहीं, अब शीघ्र ही देखोगे, यदि अपना कल्याण चाहते हो तो पाँव सिर पर उठा कर चलते बनो। (तलवार पर हाथ ले जाते हुए) कोई है ?

(भिक्षुका भयसे कांपते हुए प्रस्थान)

(साभिवादन-द्वारपालका प्रवेश)

द्वारपाल—(मिहिरकुलको तलवार खींचते देखकर भय पूर्वक) महाराज ! आज्ञा कीजिए।

मिहिरकुल—(तलवार म्यानमें डालते हुए) सेनापतिको शीघ्र मेरे पास भेजो।

द्वारपाल—जो आज्ञा, (साभिवादन प्रस्थान)

मिहिरकुल—(टहलते हुए उद्विग्नताके साथ) जो नया मत चलाया जाता है उसमें लोगोंके खींचने के लिए कई ढोंग रचे जाते हैं। उपदेश कुछ करते हैं आचरण कुछ और, दूसरोंको शिक्षा कुछ देते हैं और आप व्यवहार कुछ और करते हैं। ये लोग एक नया प्रपञ्च रचकर लोगोंको विपथ-गामी बनाते हैं। कौनसा मत है जो परस्पर भ्रातृ-भावके विपरीत उपदेश करता है ? कौनसा मत है जो दया-भावके विपरीत क्रूर-भावका उपदेश करता है ? कौनसा मत है जो मोक्षके विपरीत सांसारिक विषयोंमें फँसे रहनेका उपदेश करता है ? सबका लक्ष्य एक है। सबका ध्येय एक है। फिर नए-नए मत बनानेसे क्या लाभ ? कौनसा मत कहता है कि सत्य बोलना पाप है ? कौनसा मत कहता है कि गुरु जनोंकी सेवा शुश्रूषा पाप है ? कौनसा मत कहता है कि यम नियम पाप है ? कोई नहीं, कोई मत ऐसा नहीं कहता तो नए मतमतान्तरोंसे कुछ लाभ नहीं। शिव-स्तुतिमें क्या बुराई है। सूर्य-वन्दनामें क्या निन्दा है ? तो क्यों न नए मतोंको कुचल दिया जाय। इन मतोंके अनुयायी दूसरोंके मतोंमेंसे ही कुछ बातें उड़ाकर नए मतके स्रष्टा कहलाना चाहते हैं। दूसरोंके मतमेंसे चोरी कर साधु-भिक्षु कहलाना चाहते हैं ? छिः ! छिः !! मैं इनका दमन करूंगा। इन ढोंगियोंको पैरों-तले रौंद दूंगा। (सावेग प्रस्थान)

(पट परिवर्तन)

प्राचीन भारतमें मुद्रणकला

[लेखक—श्री भूपेन्द्रनाथ जी वन्द्योपाध्याय M. A.]

साधारणतया लोगोंका यही विश्वास है कि भारतवर्षमें लेखन अथवा मुद्रण-कला प्राचीनकाल में नहीं थी। भारतवासी अष्टम खृष्टपूर्वाब्दके पहले लिखना नहीं जानते थे और १४०० खृष्टाब्दके पूर्व उनको छपाईकी कलाका ज्ञान नहीं था। यह ज्ञान भारतीयोंको पाश्चात्त्य पंडितोंसे मिला है, इसी बात को वे अन्धपरम्परा न्यायसे सच मान बैठे हैं। हम लोगोंमेंसे अधिकतर ऐसे हैं जो कभी जाननेकी चेष्टा ही नहीं करते कि उपर्युक्त कथनमें कोई सत्यता है अथवा नहीं। परन्तु थोड़ेसे सत्यान्वेषी ऐसे हैं जिन्होंने पाश्चात्त्य मतमें आस्था न रख कर सत्य तत्त्व का आविष्कार किया है; परन्तु दुःख इस बात का है कि हमारे देशमें अभी तक ऐसे बहुतसे विद्वान् और ज्ञानी हैं जो पाश्चात्त्य-पण्डितोंके मतको ही सत्य मानते हैं और यदि कोई उनके विरुद्ध कुछ कहना चाहता है अथवा कहता है, उसकी हँसी उड़ाते हैं। इसमें उनका कोई दोष नहीं है, दोष है हम लोगोंकी शिक्षाप्रणालीका। क्योंकि हम लोगोंकी शिक्षा आरम्भसे ही दूषित है। यदि यह बात न होती तो क्या हम लोगोंको वेदका परिचय मैक्समूलर (Maxmuller) साहबके अनुवादसे मिलता? हम मेंसे अधिकतर महाभारतमें वर्णित अग्निबाण और रामायणके पुष्पक-विमानकी वास्तविकतामें विश्वास नहीं करते थे—इनको भंगेड़ियोंकी गप्प कह कर उड़ा देते थे। वर्तमान कालमें अब उन्हींको प्रत्यक्ष देख कर विश्वास करनेमें वाध्य हो रहे हैं। बहुतसे ऐसे हैं जो मूल ग्रन्थको बिना पढ़े ही कह देते हैं कि अमुक कथा अमुक ग्रन्थमें नहीं है, इस कारण उन पुस्तकों के उद्धरणों पर विश्वास नहीं करते। कारण यह है कि उन्होंने उन पुस्तकोंको स्वयं नहीं पढ़ा है। उन पुस्तकोंका ज्ञान वे किसी प्रस्तुत सूचीसे प्राप्त करते हैं और उसीको यथार्थ समझते हैं। जब तक हम लोगोंकी शिक्षाप्रणालीमें परिवर्तन नहीं होगा तब तक इस प्रकारके अज्ञानका भी दूर होना सम्भव नहीं है।

भारतीय लिपि कितनी पुरानी है, यदि कोई जानना चाहे तो महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचंद ओझा कृत प्राचीन-लिपि-माला और नगेन्द्रनाथ वसु कृत भारतीय-लिपितत्त्वका पाठ कर सकते हैं। दोनों ही पुस्तकें हिन्दी भाषामें हैं।

बहुत प्राचीन सभ्यजगत्के किस स्थान पर सबसे पहले चित्रलिपि और मुद्राङ्कन द्वारा उसकी नकल उतारनेकी प्रथा जारी हुई थी, मुद्रायंत्रके इतिहासमें इसका क्रमबद्ध विवरण लिपिबद्ध नहीं हुआ है। प्राचीन-भारत, मिश्र, बेबिलोन, काल्दीया, सीरिया चीन आदि सुसभ्य राज्योंमें शिलालिपि (Inscription) भृत्फलकलिपि (Terra Cotta Tablets) और सङ्केत मुद्रा (Heiroglyphics) आदिका उद्भव हुआ था, परन्तु उस समय उन सब प्रतिलिपियों का उद्धार सम्भव हुआ या नहीं, यह अनुमान करने की बात है। फिर यह भी स्वीकृत है, कि सुप्राचीन आर्य हिन्दु तथा बेबिलोन और काल्दियावासी लोग लकड़ीके टुकड़ों पर अक्षर (Block) खोदने वाली विद्याको जानते थे, इसमें कोई सन्देह नहीं।

प्राच्य और प्रतीच्य सुधीमण्डली एक स्वरसे स्वीकार करती है कि लकड़ीके टुकड़े पर आवश्यकीय चित्रादि अथवा दाक्षिणमुखी (उल्टा) लिपिखुदाई कर और भाषाके विकासके साथ नियत परिवर्त्तनीय अक्षरावलियोंकी नकल उतारनेकी प्रथा जगत्में सबसे

पहले केवल चीन देशमें ही प्रचलित थी — (१) सुसभ्य कहलाने वाले यूरोपीय इस कलाको लेशमात्र भी उस समय जानते न थे। चीन देशमें सर्वप्रथम छपाईका आविष्कार मांगताओ नामी एक चीनी राजमंत्रीने ६५०-६३० खृष्ट पूर्वाब्दके मध्यमें किया था। यद्यपि चीन देशमें छपाईका प्रमाण बहुत पहलेका मिला है तथापि पुस्तक मुद्रणका काम ८६८ खृष्टाब्दमें हुआ है। Dr. W. Hummel American Oreintal Society के सभापतिने अपने भाषणमें कहा है:—"The earleast printed book which can be dabed, the **Diamand Sutra** in the form of a Seroll, was produced in Sbs. AD. उनकी वक्तृताका विषय था Development of the Book ih China (Vide Indian. P. E. N. 1941. P. 240) Eneyclopaedia Britannica नामक बृहत् अंग्रेजी कोषमें इस बातकी स्वीकारोक्ति नहीं है। उसमें ऐसा लिखा है :— "From such evidence as we have it wonld seem that Europe is not indebted to the Chinese or Japanese for the Art of Block Printing, not for that of Printing with morable types." किन्तु अन्यान्य सुधीजनोंने पक्षपात रहित होकर चीनके मौलिकत्वको स्वीकार किया है:— "Even in Europe, however, although the made of writing was olphebefic, it was the Chinese made of printing that was first practised. Some baveevan supposed that the knowledge of the Art was originally obtained from the Chinese." English Cyclopaedia of Art and Science Vol III P. 746." पर्यटक मार्को पोलो ने १३वीं शताब्दीके अन्तमें स्वदेश लौटने पर प्रिय लोगोंसे अपने प्रत्यक्ष देखे हुए चीन देशीय कागज के रुपयेका (Paper maney by shamping it with a seal covred with Cumiabar·) वृत्तान्त कहा था। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि यह चीनकी मुद्रण प्रणालीका एक अंग है।

भारत और चीन देशका सम्बन्ध साहित्य, संस्कृति और सभ्यताके विषयमें बहुत दिनोंसे अत्यन्त घनिष्ठ रहने पर भी भारतवर्षमें मुद्राङ्कन कलाका ज्ञान नहीं था यह बात विश्वास योग्य नहीं है। मेरा यह अनुमान है कि छपाईका काम भारतीयोंसे ही चीनियोंने सीखा था। चीनके निवासी भारतवर्षको बहुत दिनोंसे जानते हैं। महाभारतसे आरम्भ करके अन्यान्य बहुतसे प्राचीन संस्कृत और बौद्ध ग्रन्थोंमें चीन देशका उल्लेख है।* भारतवर्षमें रेशम और कपड़ों पर छपाईका काम बहुत प्राचीन समयसे ही

1 As in many an other matter this light [Printing] too originated from the East; for it is the Chinese who had anticipated the occidental discoverer by centuries both in a wholesome woodcut reproduction known as Block printing or paper and other materials in that great Country was being done during the Heir dynasty of kings between 221 B.C. & 201 B.C. and the practice continued ever since ("Vide Advancement of Knowledge by Writing & Printing" by S. C. Guha in the Journal of the Benares Hindu University (Vol 6, p.p. 56-7.

(*) Sorensen Index to Mahabharat pp. 175–176 —The Cinas brought presents at the Rajsuya sacrifice of Yudhishthira.
On the way from Himalaya to king Subahu, the Pandavas crossed the country of the Cinas.
Cinas are mentioned in Kalidas: Shakuntala, Kautilya's Works, Milind Panho, Aevaghosha.
In Chinese the general term used for India is Tien Chu.
The earliest use of Shentu was made by Chinese envoy Changkien (B.C. 123).

होता था। भारतवर्ष धार्मिक देश है, यहाँ पर राम-कृष्ण और अन्यान्य देवताओंके नामके छपे हुए वस्त्रोंका प्रचलन बहुत पुरातन है, इस विषयमें कोई सन्देह नहीं है। कागज पर लिखी पुस्तकका परिचय भी बहुत पहले मिला है। गौरीशंकर हीराचंद ओझा लिखित प्राचीन लिपिमालाके १४४ पृष्ठ पर और मैक्समुलर (Maxmuller) लिखित History of Ancient Sousbrit Litracher के ३६७ पृष्ठमें यह बात पाई जाती है कि ३२७ खृष्ट पूर्वाब्दमें जिस समय सिकन्दर (Alexander) भारतमें आक्रमण (Caupaign) किये हुए था, उसके किसी अनुचर ने कहा था कि भारतमें रुईके बने हुए कागज पर वह युद्धका इतिहास लिख रखता था। यद्यपि अभी तक प्राचीन मुद्रित पुस्तकका अस्तित्व भारतमें सिद्ध नहीं हुआ है परन्तु आशा की जा सकती है कि एक दिन ऐसा आवेगा जिस दिन यह बात सिद्ध हो जायगी कि भारतमें ही पहले पहल मुद्राङ्कन कलाका प्रचार था।

The earliest story of Sino-Indian contact is connected with the Emperor Hien Wu (140–80 B.C.) of the early Han dynasty. We read that about B.C. 121 an image of sane diety was secured in Central Asia and brought to China. It is said to have been brought by a victorious general from a Hun Chieftain, who was in the habit of worshipping it. The image was indeed one of Buddha (Giles: Confucianism and its rivals, Hibbert lectures p. 105–20). It should be observed that during this period the Chinese began to come in contact with the Central Asian peoples. Recent archaeological discoveries in Central Asia further corroborate the same, and we learn that an Indian Colony with Buddhist population was in existence in the 2nd century B. C. (Vide. Chavannes Ses. documents "Chinois documents" from Sir A. Stein 1913 Introduction) also Charles Elliot Hinduism and Buddhism Vol. III.

पहले ही कह दिया गया है कि पत्थर और दूसरे धातुओं पर खुदाईका काम बहुत प्राचीन समयसे ही हमारे देशमें होता था। ऋग्वेदमें भी मुद्रा इत्यादि का उल्लेख पाया जाता है, परन्तु उससे प्रतिलिपि ली जाती थी अथवा नहीं; यही द्रष्टव्य विषय है।

नामावली वस्त्र और वैष्णवोंके शरीर पर विविध प्रकारके छाप सभीने देखे होंगे। शरीर पर छाप लगानेकी प्रथा इस देशमें बहुत प्राचीन है। मुद्राका एक अर्थ—विष्णुके आयुधोंके चिह्न जो प्रायः भक्त लोग अपने शरीर पर तिलक आदिके रूपमें धारण करते हैं। भगवान्को प्रसन्न करनेके लिए उक्त नारायणी-मुद्रा या चिह्न धारण करना होता है। मत्स्य कूर्म आदि चिह्न तथा चक्रादि आयुध-चिह्न धारण करके हरिकी आराधना करना उचित है। स्मृति कहती है —

> अङ्कितः शङ्खचक्राभ्यामुभयोर्बाहुमूलयोः।
> समर्चयेद्धरिं नित्यं नान्यथा पूजनं भवेत्॥

अर्थात् हरिकी अर्चना करनेसे पहले दोनों बाहुओंमें शङ्ख और चक्रका चिह्न लगाना चाहिये, नहीं तो वह पूजा फलदायक नहीं होती। गरुड़-पुराणमें लिखा है:—

> सर्वकर्माधिकारश्च शुचीनामेव चोदितः।
> शुचित्वञ्च विजानीयान्मदीयायुधधारणात्॥

शुचि व्यक्तिको ही सभी कामोंमें अधिकार है। किन्तु यह शुचित्व हरिके आयुधादि धारण किये बिना प्राप्त नहीं होता। पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें लिखा है "शङ्खचक्रादि चिह्न हरिको अति प्रिय है। इन सब चिह्नोंसे जो व्यक्ति अपने अङ्गको भूषित नहीं करता, वह सब धर्मों से भ्रष्ट होकर नरकगामी होता है।"

> शङ्खचक्रादिभिश्चिह्नैर्विप्रः प्रियतमैर्हरेः।
> रहितः सर्वधर्मेभ्यः प्रच्युतो नरकं व्रजेत्॥

तन्त्र शास्त्रमें भी मुद्रा धारणकी विधि है— गौतमीय तन्त्र देखिये। केवल स्मृति पुराणादि शास्त्रों में ही नहीं परन्तु वेद प्रभृति आर्षग्रन्थोंमें भी विष्णु

की अर्चनाके समय शंखचक्रादि चिह्न धारण करनेकी विधि है। जैसे —

धृतोर्द्धपुण्ड्रः कृतचक्रधारी विष्णुं परं ध्यायति यो महात्मा।
स्मरणे मंत्रेण सदा हृदि-स्थितं परस्परं यन्महतो महान्तम्॥
(यजुर्वेद कठशाखा)

"एभिर्वयमुरुक्रमस्य चिह्नैरङ्किता लोके शुभगा भवेम।
तद्विष्णोः परमं पदं ये गच्छन्ति लाञ्छिता इत्यादि"
—अथर्ववेद

मुद्राराक्षस नाम नाटकमें मुद्रा शब्दका प्रयोग मुद्रणके अर्थमें कई बार हुआ है। प्रथम अङ्कमें "अनयामुद्रया मुद्रयैनम्" अर्थात् इस मुद्रा द्वारा इसको मुद्रित करो। यहाँ पर मुद्रा लगानेके अर्थमें प्रयोग हुआ है। अंग्रेजीमें जिसे 'सील' Seal करना कहते हैं। ५म अङ्कमें "अगृहीत मुद्रः कटकान्निष्कामसि' यहाँ पर अंग्रेजीमें Pass port अथवा मुक्तिपत्रके अर्थमें व्यवहृत हुआ है। उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि भारतीयोंको प्रतिलिपि द्वारा मुद्रण करना भलीभांति विदित था। इस कारण यह बात माननेके योग्य नहीं कि हमारे देशवासी अपनी सुविधाके लिए प्रतिलिपि द्वारा मुद्राङ्कन नहीं करते थे।

तन्त्र शास्त्रमें मुद्रणका उल्लेख बहुत स्पष्ट रूपसे है। यथा —

मुद्रालिपिः शिल्पलिपिर्लिपिर्लेखनी सम्भवा।
गुण्डिकाघूण सम्भूता लिपयः पञ्चधा स्मृताः॥
(वाराहीतन्त्र)

पांच प्रकारकी लिपियोंमेंसे मुद्रालिपि भी एक है। मुण्डमाला-तन्त्रमें लिखा हुआ है कि विप्रगण कलमसे लिखते वा मुद्रासे जो अङ्कित करते तथा शिल्पीगण जो निर्माण करते उसको सर्वदा पढ़ना और धारण करना चाहिए।

लेखन्या लिखितं विप्रैर्मुद्राभिरङ्कितञ्च यत्।
शिल्पादि निर्मितं यच्च पाठ्यं धार्यञ्च सर्वदा॥
(मुण्डमालातन्त्र)

तन्त्रमें इस प्रकार स्पष्ट प्रमाण रहने पर भी यदि यह बात न मानी जाय कि प्राचीन भारतके निवासी मुद्राङ्कनसे अभिज्ञ थे तो इससे बढ़कर शोचनीय और क्या हो सकता है। यहाँ पर यह आपत्ति हो सकती है कि तन्त्रशास्त्र अति अर्वाचीन हैं, सम्भवतः मुद्रणकलाके आविष्कारके पश्चात् उनका उद्भव हुआ है। परन्तु यह अनुमान ठीक नहीं है। यद्यपि सभी तन्त्र पुस्तक अति प्राचीन नहीं हैं, तथापि शास्त्र बहुत ही प्राचीन है और वेदात्मक है। आधुनिक ग्रन्थ पुरातन ग्रन्थोंकी पुनरुक्तिमात्र हैं। इस लेखमें तन्त्र शास्त्रकी उत्पत्तिका यथार्थ समय निरूपण करना नहीं है क्योंकि हमारे देशके किसी भी शास्त्र का यथार्थ कालका निर्णय अभी तक न हुआ है और न हो सकेगा। इस लेखमें जिन ग्रन्थों अथवा शास्त्रों के उल्लेख किये गए हैं वे निस्सन्देह छपाईके पाश्चात्य सिद्ध समयके बहुत पूर्ववर्त्ती ही हैं। पाश्चात्य पण्डित सर जान उडरफ (Sir John Woodroffe) जो किसी समय कलकत्ता हाईकोर्टके जज थे और जिन्होंने तन्त्रोंका भलीभांति अध्ययन किया था, कहते हैं कि तन्त्रोंकी उत्पत्ति चाहे जब हुई हो, यह मानना ही पड़ेगा कि साधारण मत भ्रान्त है। उनका यह मत है कि यह अति प्राचीन शास्त्र है और नवीन तंत्र ग्रन्थ प्राचीन तंत्र जिनका सम्भवतः लोप हो गया है, उन्हीं के आधार पर लिखे गये हैं। एक साहब की उक्ति दिखलाकर वे यह सिद्ध करते हैं कि तांत्रिक मत और पौराणिक कथायें ईसाके पूर्व तीसरी शताब्दी में सुप्रचलित थीं और ये कथाएं एक दिनकी नहीं हो सकतीं हैं। इस कारण ये अवश्य ही खृष्ट पूर्व तृतीय शताब्दीके बहुत पहले की हैं।

हमारे शास्त्रोंसे भी तंत्रका प्राचीनत्व प्रमाणित होता है। वेदसे यदि हम लोग देखना आरम्भ करें तो यह देखते हैं कि तंत्रका प्रभाव ऋग्वेदमें पर्याप्त है। तारा शक्तिका परिचय हमें ऋग्वेदसे ही होता है, जो तंत्र शास्त्रकी प्रधाना शक्ति हैं और दशमहाविद्याओंकी द्वितीया विद्या है। तंत्रमतसे शिव और शक्तिके मिलनसे ही सृष्टिकी उत्पत्ति होती है। शक्तिके काली तारा इत्यादि ८ नाम ऋग्वेदमें ही है। (ऋग्वेद १०–१२५) देवीसूक्त मार्कण्डेय

पुराणान्तर्गत चण्डीके देवी महात्म्यकी तरह शक्ति अथवा देवीकी उपासना है, यह तो हुई शक्ति। शिव भी ऋग्वेदमें ही हैं। रुद्र शिवका ही दूसरा नाम है। मैकडोनल साहब अपने संस्कृत-साहित्यके इतिहासमें ८६वें पृष्ठमें लिखते हैं कि शिवका अर्थ मंगलमय अथवा मंगलकारी है और रुद्रका यह विशेषण ऋग्वेद में कई जगह है, और दूसरे वेदोंमें भी पाया जाता है। उनका मत है कि 'शिव' विशेषण शब्द पश्चात् विशेष्य रूप से ही व्यवहृत होने लगा और रुद्रका नाम ही शिव पड़ गया और इसी नामसे वे आज भी पूजे जाते हैं। ऋग्वेद (१०-९२-९) के निम्नलिखित मंत्रसे यह प्रमाणित है:—

स्तोमं वो अद्य रुद्राय शिक्कसे क्षयद्वीराय नमसा दिदिष्टन।
येभिः शिवः स्ववाँ एव यावभिर्दिवः सिषक्ति स्वयशा निकामभिः॥

(येभिः) जिन (एव-यावभिः) वेगसे जाने वाले शक्तिशाली (शिवः) सबका कल्याणकारी (स्व यशः) स्वयं अपने सामर्थ्यसे यशस्वी है। उन ही (नि-कामभिः) नितरांकान्तियुक्त जनोंसे वह (दिवः सिषक्ति) नाना कामनावान् जनोंकी अभिलाषाओंको पूर्ण करता है। हे विद्वान् पुरुषों! (अद्य) आज उसी (रुद्राय) गरजते बरसते मेघके तुल्य सुखोंके वर्षक दुष्टोंको रुलाने वाले (शिक्कसे) शक्तिशाली (क्षयद्वीराय) वीर पुरुषोंका नाश करने वाले, और सेनापतिके तुल्य एवं (क्षयद्वीराय) वीरोंको बसाने वाले की (नमसा स्तोमं दिदिष्टन) विनय भावसे स्तुति करो।

फिर देखिये सांख्योंका पुरुष और प्रकृति शिव और शक्तिका ही दूसरा नाम है। अन्तर केवल यही है कि प्रकृति जड़ है। शक्तिका दूसरा नाम माया है। श्वेताश्वतरोपनिषद्में प्रकृति हुई माया और पुरुष मायिन्। देवी, त्रिपुरा, अन्नपूर्णा और दक्षिणामूर्ति। उपनिषदोंमें शक्तिके विविध नाम यथा काली, कराली, दुर्गा, अन्नपूर्णा, हैमवती, उमा, अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका पाये जाते हैं। तैत्तिरीय-ब्राह्मण (१-६-१०-४) में अम्बिका रुद्रकी भगिनी कही गई हैं। यजुर्वेदके वाजसनेयी-संहितामें शिवको शिव त्र्यम्बक, कृत्तिवास और पिनाकहस्त कहा गया है। शतपथ ब्राह्मणमें शिवजीके आठ नामोंका उल्लेख है। यजुर्वेद (११-१-२२) में उनके बहुत नाम हैं। इन्हीं सब कारणों से कुलार्णव-तंत्रमें तंत्र वेदात्मक कहा गया है (तस्माद्वेदात्मकं शास्त्रं विद्धि कौलात्मकं प्रिये!) उपर्युक्त उद्धरणोंसे यह प्रमाणित होता है कि तंत्र-शास्त्रकी उत्पत्ति वेदके साथ ही साथ है। तंत्र शास्त्रमें कहा गया है कि मुद्रा लिपि पाठ्य और धार्य है। सुप्राचीन भारतमें किसी प्रकारकी मुद्रण प्रथा अवश्य ही थी। सम्भवतः अति प्राचीन मुद्रित पुस्तकों का लोप हो गया है और यह स्वाभाविक है। परन्तु किसी-न-किसी समय किसी स्थान पर प्राचीन मुद्रित पुस्तकका प्रमाण प्राप्त हो भी सकता है। यह बात भी माननी पड़ेगी कि वर्तमान मशीनकी छपाई जिससे एक समय ही बहुत सी प्रति लिपियां हो सकती हैं वैसा उस समय न रहा हो। भारतवर्ष धर्म-प्रधान देश है। यहाँ अभी तक हस्तलिखित पुस्तकोंका ही आदर होता है। सम्भवतः छपाईमें कुछ अशुद्ध वस्तुओंका प्रयोग करना पड़ता था, इस कारण यहाँके पण्डित लोग छपाईके पक्षमें नहीं थे। केवल ऐसा मुद्रण जिसमें शुद्ध उपकरणों ही से काम चलता था वही केवल होता था—यथा वस्त्र पर देवताओं इत्यादि की छपाई, शरीर पर आयुधादि चिह्न और तंत्रके समयसे कुछ पुस्तकोंका मुद्रण। एक समय बहुतसे पुस्तकोंके प्रकाशित होने की आवश्यकता उस समय भी होती थी जो विश्वकोष वर्णित निम्नलिखित शब्दोंसे भी सिद्ध होता है "पहले हस्तलिखित पोथीके साहाय्यके बिना विद्या लाभ अथवा अन्यान्य ग्रन्थोंके पढ़नेकी सुविधा न थी। विद्याका गौरव, प्रभाव और आदर बढ़नेके साथ-साथ जन साधारणको हस्तलिखित पुस्तकोंके संग्रहका अभाव अनुभूत हुआ था। एक ग्रन्थ लिखने का अभ्यास करनेमें जो समय लगता था, लिखित पोथियोंके पढ़नेमें उससे बहुत कम समय व्यय करना पड़ता था। सुनते हैं कि भारतवर्षके नालन्दाके विद्यामन्दिरमें लिपिग्रथित पुस्तकोंके अधिक प्रचार

करनेके लिए बौद्धयतियोंने मठोंमें बहुत बड़ी दवातें तय्यार की थीं। दवातके चारों ओर "साऊफोन" आकारके एक हजार छिद्र होते थे। ऊपरसे स्याही उड़ेल कर एक आदमी उच्चैः स्वरसे पोथी पढ़ता था और दवातके सहस्र छिद्रोंके मुख पर सहस्र छात्र बैठकर एक ही समय ग्रन्थ सदा संगृहीत करते थे।

विद्योत्साही समयकी महर्घताका अनुभव कर या समयको मूल्यवान् समझ पोथियोंको हाथसे लिखने में समयका अधिक लगना देख एक ही साथ कई पोथियोंके तय्यार करनेमें लगे। क्रमशः उनका यत्न और अध्यवसाय सफल हुआ। लकड़ी और जली हुई मिट्टीके फलकमें पोथियोंकी भाषाओंके अक्षरों को एकत्र कर उनपर स्याहीका प्रयोग कर आवश्यकताके अनुसार कागज या भोजपत्र पर पोथीकी नकल उतार लेनेकी व्यवस्था हुई। इसमें भी भ्रम संशोधनकी असुविधा होते देख परवर्त्ती उन्नत चेता विद्वन्मंडली उक्त प्रथाके उत्कर्ष सम्पादनमें यत्नवान् हुई। इसी तरह क्रमविकाशकी धाराके अनुसार क्रमसे मिट्टी, ताम्बा, लोहा, पीतल और सीसेके अक्षर ढालकर या छेनीसे काटकर लिपिग्रन्थके नैपुण्य की पराकाष्ठा प्राप्त हुई है।

ऐसा सुना गया है कि बड़े लाट हेस्टिंग्सके समयमें जमीनके अन्दरसे लकड़ीकी बनी हुई एक मशीन मिली थी, बहुतोंका मत है कि प्राचीन समयमें वैसे ही यन्त्रसे छपाईका काम होता था।

उत्पलदेव आचार्य

[लेखक—श्री पं० बलजिन्नाथ जी शास्त्री B. A.]

हमारे मोक्ष-स्तम्भके लेखोंमें प्रायः उत्पलदेव आचार्यके वचनोंका उल्लेख प्रमाण रूपमें मिलता है। आज हम इस बहुमान्य आचार्यके विषयमें 'श्रीस्वाध्याय' के पाठकोंकी सेवामें कुछ निवेदन करना चाहते हैं। जिन्होंने शैव-शास्त्रका कोई भी ग्रन्थ देखा हो वे तो भगवान् उत्पलदेवके नाम काम तथा गुणों और विचारोंसे प्रायः थोड़े बहुत परिचित होंगे ही। शैवशास्त्रका प्रचार भारतवर्षमें ऋग्वेद के कालसे ही उत्तरोत्तर वृद्धि करता आया है। परन्तु प्राचीन समयमें न्याय आदि शास्त्रोंकी भांति इस विषय पर कोई पृथक् ग्रन्थ नहीं लिखा गया था। यदि कोई ग्रन्थ रचा भी गया हो परन्तु अर्वाचीन कालमें उपलब्ध नहीं था। इस शास्त्रके आदि-ग्रन्थकार दो हैं, एक तो 'वसुगुप्त' जिसने 'शिवसूत्रों' को प्रकट किया और दूसरा 'सोमानन्द' जिसने 'शिवदृष्टि' नामक ग्रन्थका निर्माण किया। इसी सोमानन्दका शिष्य उत्पलदेव था। शैवशास्त्रके सभी ग्रन्थकार तथा टीकाकार बहुत ही आदरपूर्वक उत्पलदेव तथा उसके गुरुके नामका उल्लेख करते हैं। जिस 'शिवाद्वैत वेदान्त' अर्थात् शैवशास्त्रको सूत्ररूपमें सोमानन्दने कहा, उसी का व्याख्यान 'शिवदृष्टि'की टीकामें उत्पलदेवने किया है। इसके अतिरिक्त उत्पलदेवने शैवशास्त्रके सर्वोच्च ग्रन्थ "ईश्वरप्रत्यभिज्ञा" का निर्माण किया। इस ग्रन्थ द्वारा शैवशास्त्रके सभी विषयों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इसी ग्रन्थको प्रायः 'शैवदर्शन' कहते हैं। यह ग्रन्थ भी सूत्ररूपमें ही रचा गया है। इसमें आत्मविद्याके विषयमें समस्त मतोंकी परीक्षा तर्ककी कसौटी पर की गई है। अनेक प्रकारोंसे परमेश्वरके पूर्ण स्वातन्त्र्य स्वरूपको तर्क द्वारा सिद्ध करके दिखाया गया है। "परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते" इत्यादि उपनिषदों के उपदेशों तथा भगवान् शङ्कराचार्यके ब्रह्मविषयक "सर्वकर्तृ, सर्वज्ञं, सर्वशक्ति"

इस इस प्रकार के निर्देशोंका रहस्य तो इसी ग्रन्थ द्वारा पूरी तरह प्रकाशित होता है। परमेश्वर निर्गुण होकर भी किस प्रकारसे गुणोंका उल्लास करता है और ऐसा करता हुआ भी वह किस प्रकारसे अपने स्वरूप से च्युत नहीं होता ? इस प्रकारकी कठिन समस्याओं का समाधान जैसा उत्पलदेव और उसके टीकाकार अभिनवगुप्तपादने किया है वैसा संसार भर का कोई भी दार्शनिक नहीं कर सका। संक्षेपसे तो हम यही कहेंगे कि संसारकी अत्यन्त कठिन समस्याओं को सुलझानेका सर्वोत्तम उपाय है भगवान् उत्पलदेवके उपदेशोंको पढ़ना तथा यथार्थ रूपमें समझना। आत्मविद्याके जिन विषयोंका उपदेश 'प्रत्यभिज्ञा' ग्रन्थमें विस्तारपूर्वक नहीं किया गया है उनका दिग्दर्शन स्पष्टतया उत्पलदेवने (१) "ईश्वर-सिद्धिः" (२) "सम्बन्ध-सिद्धिः" और (३) "अजडप्रमातृ-सिद्धिः" नामक ग्रन्थोंमें किया है। इन तीन दार्शनिक ग्रन्थोंका एक ही नाम "सिद्धित्रयी" भी है। इन मूल ग्रन्थोंके अतिरिक्त भगवान् उत्पलने (१) "शिवदृष्टि वृत्ति" जिसका उल्लेख पहले किया गया है और जो अधूरी ही उपलब्ध हुई है, (२) "ईश्वर–प्रत्यभिज्ञा–वृत्तिः", (३) "ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विवृत्तिः" अथवा "ईश्वरप्रत्यभिज्ञा टीका" ये तीन टीकाएं भी रची हैं। इनमें से तीसरी टीका अभी तक उपलब्ध नहीं हुई है। इन ग्रन्थोंमें से सभी उपलब्ध ग्रन्थ काश्मीर राज्यके रिसर्च विभाग द्वारा छपे हैं। ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकी विमर्शिनी नामक व्याख्याकी 'भास्करी' टीका काशीमें प्रकाशित हो गई है।

ऊपर कहे हुए ग्रन्थ सभी दर्शन विषयक हैं। इनके अध्ययनसे हमें ज्ञात हो सकता है कि उत्पलदेव कितना प्रकाण्ड पण्डित था। इन ग्रन्थोंको तो शैव लोग संसारके सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ मानते हैं। परन्तु हमें इन सभी से अधिक प्रिय भगवान् उत्पलदेवकी "शिवस्तोत्रावली" ही लगती है। इस ग्रन्थरत्नमें दर्शन जैसे कठिन विषयका अति सुन्दर तथा मनोहर काव्य द्वारा अत्यन्त ललित रीतिसे प्रतिपादन किया गया है। यह अत्युत्तम काव्य भी है और दार्शनिक पुस्तक भी। इसके अध्ययनसे हमें भगवान् उत्पलदेव की रसिकता, परमेश्वर भक्ति, हृदयकी कोमलता, ज्ञानकी उच्चता तथा काव्य रचनामें पटुताका अच्छी प्रकारसे ज्ञान होता है। इसमें तो आचार्यने यह दिखा दिया है कि उन्होंने आत्मविद्याका उपदेश केवल तर्क द्वारा ही नहीं किया है, अपितु इसका अनुभव भी उन्होंने पर्याप्त मात्रामें किया है। उत्पलदेवकी उच्चता का ज्ञान तो वास्तविक रीतिसे शिवस्तोत्रावली द्वारा ही होता है। जिसने परमेश्वरका साक्षात्कार स्वयं अनुभव द्वारा न किया हो वह तो इस प्रकारके ग्रन्थ की रचना कर नहीं सकता। प्रत्यभिज्ञाके अनेक विषय उस ग्रन्थके अध्ययनसे इतने हृदयङ्गम नहीं होते जितने कि शिवस्तोत्रावली से। भक्तिके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान भी इसी ग्रन्थरत्न द्वारा होता है। इस ग्रन्थके एक दो श्लोकोंको हम उदाहरण-रूपमें यहाँ देते हैं — उत्पलदेवकी परमेश्वर पूजाका स्वरूप देखिए :—

तत्तदिन्द्रियमुखेन सन्ततं युष्मदर्चनरसायनासवम्।
सर्वभावचषकेषु पूरितेष्वापिबन्नपि भवेयमुन्मदः॥

मद्य पीने वाले एक मुखसे मद्य पीते हैं, परन्तु उत्पलदेव समस्त ज्ञान, कर्म, इन्द्रियों द्वारा परमेश्वर की पूजारूपी सुराको पीना चाहते हैं। उनका शराब साधारण शराब नहीं। वह तो रसायन-आसव है। और इस पर भी परमेश्वरकी अर्चनारूपी रसायनका आसव। मद्यप तो एक प्यालेसे शराब पीते हैं। परन्तु इनकी शराब समस्त भावजातोंमें भरी हुई है। मद्यप शराब थोड़ासा पी लेते हैं और फिर छोड़ देते हैं। परन्तु हमारे भक्तिके शराबी उत्पलदेव तो एक (आपिबन्) सदा अतिशयपूर्वक पीते ही रहना चाहते हैं; अर्थात् उनकी सुरापानकी क्रिया कभी समाप्त नहीं होती; सदाके लिए चलती ही रहती है। ऐसी सुरा पीते रहते हुए ही वे मस्त रहनेकी प्रार्थना भगवान्से करते। यह उनकी पूजा है। इसी पूजाका स्वरूप उन्होंने—

"शिवमयमखिलं लोकं क्रियाश्च पूजामयीः सकलाः"

इस प्रार्थनामें स्पष्ट कर दिया है। उनकी अलङ्कार रचनाकी पटुताको भी देखिये—

ईश्वरमभयमुदारं पूर्णमकारणमपह्नुतात्मानम्।
सहसाभिज्ञाय कदा स्वामिजनं लज्जयिष्यामि॥

इस प्रार्थनामें तो भगवान्के स्वातन्त्र्य तथा आत्मप्रत्यभिज्ञाका दिग्दर्शन करते हुए ही "स्वामिजनम्, और लज्जयिष्यामि" आदि पदों द्वारा अत्यन्त सुन्दर रीतिसे समासोक्ति द्वारा नायक-नायिकाके खेलको भी महाकविने अभिव्यक्त किया है। परमेश्वर के पूर्ण स्वातन्त्र्य तथा अभेदमें भेदरूप जगत्के निर्माणकी शक्तिका क्या ही सुन्दर प्रदर्शन निचले पद्यमें किया है:—

स्फारयस्यखिलमात्मना स्फुरन् विश्वमामृशसि रूपमामृशन्।
यत् स्वयं निजरसेन घूर्णसे तत् समुल्लसति भावमण्डलम्॥

लेख अधिक लम्बा हो रहा है। संक्षेपसे इस विषयमें इतना ही कहा जा सकता है कि भगवान् उत्पल जहाँ अद्वितीय दार्शनिक हैं, वहाँ उत्तम कवि भी हैं। अधिक तो 'शिवस्तोत्रावली' के अवलोकन द्वारा ही ज्ञात होगा। यह ग्रन्थ चौखम्बा संस्कृत सीरीज बनारसमें टीकासहित छपा है।

उत्पलदेवने अपने इतिहास पर स्वयं ही थोड़ा बहुत प्रकाश डाला है। तदनुसार उनके पिताका नाम उदयाकर था। उनका पुत्र विभ्रमाकर और सहपाठी मित्र पद्मानन्द था। इनका गुरु तो सोमानन्दनाथ प्रसिद्ध ही है। लोक प्रसिद्धिके अनुसार इनका निवासस्थान श्रीनगर (काश्मीर) के उत्तरमें 'गुप्तपुर' में था जिसे आजकल गोतपुर कहते हैं। परन्तु इसमें कोई दृढ़ प्रमाण नहीं। ये काश्मीर देश में रहते थे, यह बात तो निर्विवाद है। उत्पल वैष्णव नामक एक और काश्मीरी आचार्य था। पर वह उत्पलदेवसे भिन्न और उससे अर्वाचीन है। उत्पलदेव अभिनवगुप्त पादके गुरु लक्ष्मणगुप्तका भी गुरु था। यह तो अभिनवगुप्तने स्वयं कहा है। अभिनवगुप्तको मम्मटका समकालीन अथवा कुछ पहलेका मानना पड़ता है। क्योंकि मम्मटने उसके मतका उल्लेख काव्यप्रकाशमें किया है। मम्मट स्वयं भोजराजासे अर्वाचीन था। क्योंकि "भोज नृपतेस्तत्त्यागलीलायितम्" में उसका स्पष्ट वर्णन मिलता है। मम्मट काव्यप्रकाशके टीकाकार माणिक्यचन्द्र से पहले था। माणिक्यचन्द्रने स्वयं अपना समय जो दिया है वह ११६० ई० है। राजतरङ्गिणीके अनुसार भोजराजा और काश्मीर नरेश अनन्तदेव १०२६ के लगभग राज्य करते थे। अतः मम्मटका काल ग्यारहवीं शताब्दीका उत्तरार्ध माना जाता है। तदनुसार अभिनवगुप्तकाल इसी शताब्दीका पूर्वार्द्ध होना चाहिए। 'भैरवस्तोत्र' के "वसुरसपौषे" निर्देश में भी अभिनवगुप्तने यही काल अपना दिखाया है। बृहत्प्रत्यभिज्ञामें भी "नवतितमेऽस्मिन्" इस निर्देश से उसने यही काल निर्दिष्ट किया है। यदि अभिनवगुप्तके गुरु लक्ष्मणगुप्तको उससे २५ वर्ष पहले तथा उसके भी गुरु उत्पलदेवको इससे भी २५ वर्ष पहले माना जाए तो उत्पलदेवका काल दशम शताब्दीका उत्तरार्द्ध मानना पड़ेगा। तदनुसार सोमानन्दका काल भी दशम शताब्दी ही होना चाहिए। शैवशास्त्रके अन्य प्रवर्तक वसुगुप्त तो इससे भी प्राचीन हैं। क्योंकि आठवीं शताब्दीमें भट्ट कल्लट काश्मीरमें थे, यह राजतरङ्गिणीसे सिद्ध होता है। भट्ट कल्लटने वसुगुप्तके सूत्रोंके अनुसार कारिकाएँ लिखी हैं। अतः वसुगुप्त आठवीं शताब्दीसे भी प्राचीनके हैं।

त्यागमूर्ति गोस्वामी गणेशदत्त जी

मनोनीत अध्यक्ष, अ० भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

[श्री १०८ गोस्वामी गणेशदत्त जी महाराजके जीवनकी कार्यप्रणाली और त्याग-शैली पर दृष्टिपात करनेसे ज्ञात होता है कि उनका उत्साह, उनकी लगन, उनका हिन्दी प्रेम किस उत्कृष्ट कोटिका है। उन्होंने गत कई वर्षों से पंजाबमें हिन्दीका अत्यधिक गौरव बढ़ाया है। इस वर्ष वे अ० भा० हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके अध्यक्ष मनोनीत हुए हैं; अतः यह स्वभाव सिद्ध है कि हिन्दी प्रेमियोंकी उत्कट आकांक्षा उनके जीवन सम्बन्धी कार्योंको जाननेकी होगी। प्रस्तुत संक्षिप्त जीवन-चरित्र उनके त्यागमय आदर्श जीवनके विषयमें तथा उनकी हिन्दी सम्बन्धी सेवाओंके सम्बन्धमें कुछ-कुछ निर्मल प्रकाशका आलोक कर सकेगा ऐसी आशा है। —सम्पादक।]

पञ्जाबकी मरुभूमिमें एक पुष्प खिला और उसकी सुगन्धिसे दसों दिशायें महक उठीं—आज इसी पुष्पको अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने अपने मस्तक पर धारण कर लिया है।

उर्दू-प्रधान उत्तर-पश्चिमी-प्रदेशके हृदय, लाहौरके परकोटेके अन्तर्गत, निहालचन्द-मन्दिरकी वाटिकामें आजसे २७ वर्ष पूर्व हिन्दी संस्कृतके विद्यार्थियोंकी एक छोटीसी सभा हुई—उसमें एक श्वेत खादी धारी ब्राह्मण युवकने सरस्वती देवीकी शपथ खा कर प्रतिज्ञा की कि वह गर्मियोंके अवकाशमें कमसे कम १०० बालकों और वयस्कोंको हिन्दी भाषाका ज्ञान करा देगा। अन्य विद्यार्थियोंने करतल ध्वनिके बीच कहा "आज पञ्जाबमें हिन्दी सनाथ हो गई।"



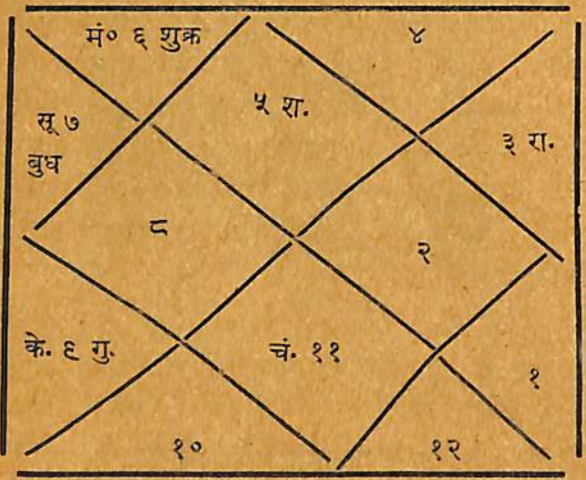
श्री० गोस्वामी गणेशदत्त जी

यह ब्राह्मण युवक लायलपुर आया और एक वृक्षके नीचे एक चबूतरे पर हिन्दी-रात्रि-पाठशाला खोलनेकी घोषणा करदी—ढिंढोरा भी स्वयं ही दिया। बालक, युवा और वृद्ध उसके शिष्य बने। लैम्प, तेल, चटाई और पुस्तकोंके लिये धनकी आवश्यकता पड़ी—परन्तु विद्या व्यसनीके पास धन कहाँ? वह निराश नहीं हुआ—सप्ताहमें दो दिन नगरकी दुकानोंसे एक-एक पैसा भिक्षा माँगने लगा। इस प्रकार ३०) मासिककी आय हो गई और पाठशाला चलने लगी। प्रतिज्ञा पूरी हुई। दो महीनोंमें २१० से अधिक नागरिक हिन्दी सीख गये। इस उत्साही वीरका नाम था गोस्वामी गणेशदत्त।

श्री गोस्वामीजीका जन्म संवत १६४६ में चिनयोटमें विष्णु लोक वासी श्री गोस्वामी मूलचन्द्र जी के घरमें हुआ। पिता इस प्रदेशके धर्म-गुरु होनेके कारण अच्छे धनाढ्य थे। सहस्रों सेवक उनकी पूजा करने आते थे, उनके अपने विशाल मन्दिरकी आय भी बहुत थी, परन्तु गोस्वामी गणेशदत्तजीकी धन और कुटम्बमें आसक्ति न थी, इसलिए विवाहके तीन वर्ष उपरान्त ही आप निवृत्तिमार्गकी ओर

आकर्षित हो गये। इनके केवल दो सन्तानें हुईं। दोनों कन्याएं थीं। इसके पश्चात् आपने वानप्रस्थ ग्रहण कर लिया। घर बार छोड़ कर लायलपुरके साधुबेलामें जा बैठे। परन्तु सार्वजनिक सेवामें त्रुटि न आने दी। प्लेगकी महामारीमें लोगोंने त्याग और सेवाकी इस मूर्तिको अपने कन्धों पर शव उठाकर श्मशान ले जाते देखा। धीरे धीरे एक हिन्दी वाचनालय भी स्थापित कर दिया। फिर इसका भवन बनाया और वहाँ नित्य-प्रति सत्संग भी होने लगा। देश और जातिके हितके लिए महावीर दल आन्दोलन भी गोस्वामी जीने लायलपुरसे ही प्रारम्भ किया।

जन्मकुण्डली श्री गो० गणेशदत्त जी



लायलपुरके एक सरकारी गर्ल्ज़ स्कूलका पारितोषक वितरणोत्सव था। वहाँ आप भी निमन्त्रित किये गये। परन्तु पहुँच कर हिन्दू कन्याओंके मुखसे जब यह गीत सुना :—

हम लट्ठा मलमल पहनेंगी, गांधीको कैद करा देंगी।

तो दुखी होकर वहाँसे चले आये। दूसरे ही दिन आपने राष्ट्रभाषा और राष्ट्रिय-भावोंके प्रसारके हेतु सनातनधर्म-कन्या-पाठशाला स्थापित कर दी। आज इनके संरक्षणमें २०० से अधिक पुत्री पाठशालायें चल रही हैं। जिनकी शिक्षाका माध्यम हिन्दी है। लगभग सभी पाठशालाओंमें कन्याओंको पंजाब यूनिवर्सिटीकी उच्चतम हिन्दी परीक्षाओंके लिये तैयार किया जाता है। अनेकों हिन्दी संस्कृत कालेज और ब्रह्मचर्य्याश्रम भी प्रान्तमें इनके द्वारा ही स्थापित हुये हैं।

गोस्वामीजीके जीवनमें तप और त्यागकी मात्रा दिन प्रतिदिन बढ़ती ही गई। एक धोती और बंडीके सिवा सब वस्त्रोंका त्याग कर दिया— इनका नियम हो गया कि शीतकालमें भी केवल एक चादरमें सोते और तीन घरोंसे भिक्षा करके भोजन करते। सन्यासियोंकी भांति पत्थरके बर्तन में खाते पीते और १२ महीनोंमें ५ महीने हिमालयमें जा कर तप करते। इन कठोर नियमोंका पालन वह गत २२ वर्षोंसे कर रहे हैं।

एक अल्पायु ब्राह्मण कुमार जो किसी स्कूलमें शिक्षक था इनके पास आया और प्रार्थी हुआ कि आप अमुक पुरुषसे अपनी कन्याका रिश्ता मेरे साथ करनेकी सिफारिश कर दें। गोस्वामीजीने उसे अपनी कन्या दे दी। साधुबेलामें विवाह सम्पन्न हुआ और इस पर कुल ११) खर्च हुए। दहेज प्रथा-को तोड़ कर पंजाबमें यह पहला विवाह हुआ। सम्बन्धियोंने घोर विरोध किया, परन्तु वे अपने संकल्प पर स्थिर रहे। परिणाम यह हुआ कि दूसरी कन्याका विवाह इनके पिताजी और श्वसुर इत्यादिने स्वयं ही कर दिया। गोस्वामीजी इस विवाहमें शामिल नहीं हुए। तबसे इनका नियम है कि जिस विवाहमें ५ से अधिक बराती आयें अथवा बहुत धन खर्च किया जावे, उसमें नहीं जाते। दुःखकी बात है कि कुछ समय पूर्व इनकी दोनों पुत्रियों और धर्मपत्नीका स्वर्गवास हो गया है।

संवत् १९७६ में इन्होंने सनातनधर्म-सम्मेलन सरगोधामें सनातनधर्म-प्रतिनिधि सभा पंजाबकी स्थापना करके समस्त प्रांतके सनातनधर्मावलम्बी हिन्दुओंको संगठित किया। अगले वर्ष रावलपिण्डीमें इनकी भेंट महामना पंडित मदनमोहन जी मालवीय-

से हुई, जो स० ध० सम्मेलनके प्रधान बन कर आये थे। मालवीयजीने इनसे कहा—"मैंने तुम्हारे प्रान्तमें पहले एक तेजस्वी युवक स्वामी रामतीर्थ देखा था। उतना ही तेज अब तुममें देखा है।"

मालवीयजीका वचन मिथ्या नहीं। गोस्वामी जीने पंजाबमें एक विशाल धार्मिक संगठन किया। ६०० स० ध० सभाओंकी स्थापना की और महावीर दलमें २५ हजार स्वयंसेवक भरती किये। इन्हींके पुरुषार्थस्वरूप आज इस प्रांतमें २५० हाई एवं मिडिल स्कूल और पाँच कालेज चल रहे हैं और दो कालेज खुलनेवाले हैं—

गोस्वामीजीका कार्यक्षेत्र मुख्यतः धार्मिक होने पर भी राजनीतिसे इनका सम्बन्ध टूट नहीं गया। कट्टर राष्ट्रवादी होनेके कारण गोस्वामीजी स्वर्गीय ला० लाजपतरायके बाद पंजाबके एकमात्र ऐसे नेता हैं जिनका प्रभाव सब क्षेत्रोंमें है। उत्तराखण्ड-के एक निर्जन आश्रममें पाँच महीने तप करनेवाला यह कर्मयोगी अन्य देशवासियोंसे कितना भिन्न है, परन्तु कितना ओजस्वी! यह महापुरुष २० वर्ष पूर्व सन्यास ले लेता यदि मालवीय जी इसे हरिद्वार-में कुम्भके अवसर पर मंत्र-दीक्षा देकर कर्मयोगका उपदेश न करते। पञ्जाब महामनाका ऋणी है—उन्होंने हिन्दू धर्मको एक नेता दे दिया।

परन्तु मुझसे भूल हुई। श्री गोस्वामी जी पंजाब ही नहीं समस्त भारतकी विभूति हैं। इनका कार्यक्षेत्र पञ्चनद भूमिकी सीमाएं लांघ कर एक ओर ब्रह्मपुत्र और दूसरी ओर गोदावरी तक विस्तृत हो गया है। धर्मराज युधिष्ठिरके इन्द्रप्रस्थमें वायसरायके बंगले और गिरजाघरके गगनचुम्बी शिखरोंको देख कर इनके हृदयमें देवमन्दिरका अभाव एक असह्य पीड़ा बन गया। आपने पहले महामना मालवीयजीसे, फिर दानवीर सेठ युगलकिशोर जी बिरलासे एक भव्य देवस्थान बनानेकी प्रेरणा की और इसका परिणाम है नई दिल्लीका पन्द्रह लाखकी लागतसे निर्मित अद्भुत श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर। मथुरामें कृष्ण जन्म भूमिको समाधिकी भांति सूनी और विधवाकी भांति उपेक्षित देख कर गोस्वामीजीको बड़ी व्यथा हुई। महामनाके आदेश और बिरलाजीकी सहायतासे उसे ५० हजार रु० में खरीदा गया और उसका ट्रस्ट बन गया। अब उसका जीर्णोद्धार होगा। आप अखिल-भारतीय सनातनधर्म-महासभाके प्रधान मन्त्री हैं। श्री बिरलाजीके सहयोगसे अ० भा० आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासङ्घ स्थापित किया गया है, जिसके आप प्रधान हैं—इस सर्वोपयोगी संस्थाके स्थायी कोषमें ३५ लाख रुपया एकत्रित हो चुका है। इसके व्याजसे हिन्दू विधवाओं, विद्या-र्थियों, शिक्षालयों अथवा धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक सेवा करने वाली संस्थाओंको सहायता दी जाती है, पर्वतीय स्थानोंके हिन्दुओंकी रक्षा की जाती है।

गोस्वामीजी सक्रियताकी मूर्ति हैं। प्रातःकालसे रातके १२ बजे तक काम करते रहते हैं, परन्तु थकते नहीं। दस वर्ष पूर्व एक अमरीकन पत्रकारको इनके सम्पर्कमें आनेका अवसर मिला। गोस्वामीजीका दैनिक समय-विभाग देखकर उसने इनके साथी कार्य-कर्ताओंसे कहा 'यह महापुरुष इतना परिश्रम करके कितने दिन जीवित रहेगा?'

प्रभुकी दयासे गोस्वामीजी न केवल हमारे बीच में विद्यमान हैं, वरन् दूने उत्साहसे देश और जाति की सेवा कर रहे हैं। इनका अधिक समय धर्मके प्रचार और संगठन इत्यादिके सम्बन्धमें भ्रमण करनेमें व्यतीत होता है। अब तक आपने सार्व-जनिक कार्योंके लिये जो धन एकत्रित किया है, उसकी संख्या एक करोड़से अधिक ही होगी।

गोस्वामीजीकी सार्वजनिक सेवामें धर्मका अङ्ग प्रधान होते हुए भी इनकी हिन्दीसेवा त्रिवेणीमें सर-स्वतीकी भांति गुप्त रूपसे विद्यमान है। इसका प्रवाह दीख नहीं पड़ता परन्तु धार्मिकमञ्च पर इनकी कोई वक्तृता ऐसी नहीं होती जिसमें जनताको हिन्दीके पठन-पाठनका आदेश न दिया जाता हो। प्रयागके कुम्भमें गोस्वामीजीने अपने कार्यालयको

सूचित कर दिया कि वे हिन्दीके अतिरिक्त किसी अन्य भाषामें लिखे हुए बिल पर हस्ताक्षर न करेंगे। हिन्दीकी उन्नतिके सम्बन्धमें पंजाबके एक मुसलिम शिक्षा मन्त्रीसे इनकी बातचीत हुई तो उसने कहा "महाराज! आप हमसे शिकायत करते हैं परन्तु हिन्दुओंके सब दैनिक पत्र उर्दू में निकल रहे हैं।" गोस्वामीजीने इस व्यंगका उत्तर यह दिया कि एक ही मासके अन्दर २ दैनिक 'विश्वबन्धु' निकाल दिया। यही नहीं, लाहौरके समस्त दैनिक-पत्रोंके सामने यह प्रस्ताव भी रखा कि यदि वह हिन्दी लिपिमें प्रकाशित होना स्वीकार करें तो हम अपना उर्दू दैनिक "वीर भारत" आज ही बन्द कर देंगे।

पञ्जाबके हिन्दी प्रेमियोंने गोस्वामीजी को दो बार प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका सभापति चुना है। आपके कार्यकालमें सम्मेलनमें नया जीवन आया है। पञ्जाबमें डेढ़सौ हिन्दी सभाएं स्थापित हो गई हैं। ६ वैतनिक कार्यकर्ता काम कर रहे हैं। गत एक वर्षमें पांच जिला सम्मेलन सफलतापूर्वक हुये हैं। कार्यालय तथा प्रचारका कार्य सम्मेलनके प्रधान मन्त्री प्रोफेसर वशिष्ठजी एम. ए. एम. ओ. एल. की सहायतासे सुचारु रूपसे चल रहा है। डाकविभाग और सरकारकी ओरसे हिन्दी पर जो प्रहार हुए हैं, उनका डटकर सामना किया गया है, परन्तु मुख्य उद्देश्य शक्ति संगठित करना रहा है।

गोस्वामीजीकी सहायतासे पञ्जाबमें भी हिन्दीको यथोचित स्थान प्राप्त होनेके चिह्न दीखने लगे हैं। नहीं तो वहाँ की मातृभाषा, राष्ट्रभाषा, नहीं, धार्मिक भाषा भी उर्दू ही थी।

कौमुदी-महोत्सव

राका-शशाङ्क-शरदङ्क-मृगाङ्कमेत्य
स्वाध्यायमातनुत मा कुरुत प्रमादम्।
ज्योत्स्नोत्सवो ऽस्य रचयेत् कमपि प्रकाशं
श्रीराष्ट्रजीवनपथं जनजागरायै॥

सोलहों कलाओंसे परिपूर्ण राका (पूर्णमासी) के चन्द्रमाके समान इस शरदङ्क रूपी चन्द्रमाको प्राप्त कर स्वाध्याय करिए तथा इसका विस्तार करिए, इसमें कहीं प्रमाद न करना। इस शरदङ्करूपी चन्द्रमाका यह कौमुदीमहोत्सव उस अनिर्वचनीय अत्यन्त प्रकाशमान राष्ट्रको जगानेके मार्गका लोगोंको उद्बुद्ध करनेके लिए निर्माण करेगा।

—अ० वा० आचार्य

दीपावली

दीनाऽवनीयदयनीयदशादिशाना-
मालोचनाय कमनीयदृशं दिशन्ती।
श्रीपूजनाय निजराष्ट्रसमृद्धिवृद्ध्यै
दीपावली दिशतु शाश्वतिकं प्रकाशम्॥

दरिद्री भिखारी लोगोंकी दयनीय परिस्थितिकी दिशाओंको विचार पूर्वक देखनेके लिए, समुचित सुन्दर कामना पूर्ण करनेवाली दृष्टिको देनेवाली लक्ष्मी का पूजन करनेके लिए, अपने राष्ट्रकी समृद्धिकी वृद्धि-के लिए यह दीपावली चिरस्थायी सनातन प्रकाश को देवे।

—अ० वा० आचार्य

साहित्य-परिचय

जिन पुस्तकोंकी दो-दो प्रतियां प्राप्त होंगी, उन्हींकी समालोचना 'श्रीस्वाध्याय' में प्रकाशित हो सकेगी। एक प्रतिका केवल संक्षिप्त परिचयमात्र (नाम मूल्यादि) प्राप्ति स्वीकार रूपमें प्रकाशित होगा। —सम्पादक]

समालोचना

शाक्तजगत्को यह विदित ही है कि पोखरा (नेपाल) निवासी तान्त्रिकशिरोमणि यान्त्रिकप्रवर कविवर मेजर जनरल श्रीमान् धनशम्शेरजङ्ग बहादुर राणा श्रीजगज्जननी राजराजेश्वरीके एक अनन्य उपासक हैं। राजकाज तथा नित्यकृत्यके अतिरिक्त अवशिष्ट समयमें आप श्रीजगदम्बाकी स्तुति मधुर पदावली गुम्फित ललितकवितामें लिख तथा उसे छपवाकर निःशुल्क वितरण करते हुए यथावकाश श्रीललिता त्रिपुरसुन्दरीके उपासकवृन्दकी सेवा करते रहते हैं। अभी आपने अपनी तीन पुस्तकें हमारे पास समालोचनार्थ भेजी हैं, उनकी संक्षिप्त समालोचना हम यहां दे रहे हैं।

श्रीपराविभूतिस्तोत्र :— लेखक और प्रकाशक— श्री मेजरजनरल धनशम्शेरजङ्ग बहादुर राणा, पोखरिया भवन (नेपाल) पृष्ठ ५०।

श्रीविद्योपासकोंके लिए यह स्तोत्र वास्तवमें पराविभूति ही है। निखिल निगमाचार्य श्रीपुण्यानन्दाचार्यके 'कामकलाविलास' की कोटिका यह स्तोत्र है। विद्वान् लेखकने अन्वय और व्याख्या साथ ही दे दी है। श्रीपरदेवता और श्रीयन्त्रराजके दो भव्य तिरंगे चित्र और महाराजाधिराज नेपाल तथा लेखकके चित्र भी पुस्तककी शोभा बढ़ा रहे हैं।

श्रीयोगानन्दलहरी। पृष्ठ २४, लेखक और प्रकाशक— उपर्युक्त श्री राणासाहब।

इस पुस्तकको ध्यानपूर्वक पढ़नेसे पाठकके हृदयमें एक अद्भुतानन्दलहरी उत्पन्न हो जाती है। तीन सुन्दर चित्र भी दिये गये हैं।

श्रीपरामहिमस्तोत्र। पृष्ठ २४ (नेपाली हाथके बने हुए कागज पर छपी) लेखक और प्रकाशक उपर्युक्त राणासाहब।

इस स्तोत्रमें विद्वान् उपासकने बड़वानल, बृहद् बड़वानल, कुलार्णव आदि अनेक तन्त्रोंके महार्णवको अपनी बुद्धिरूपिणी मथानीसे मथकर तथा अद्वितीय षडाम्नाय वर्णनामृत निकाल कर देवतोपासकोंके लिए समर्पण किया है। इसमें प्रकाश और विमर्शसे रक्त शुल्क और मिश्र बिन्दुओंकी उत्पत्ति, कामकलाविलास, प्रणव और सप्तस्वरोंका आविर्भाव, अहङ्कारात्मक बिन्दुसे दिनरात्रि और सन्ध्यास्वरूप महाकाल तथा उसको कलन करनेवाली महाकाली स्वरूपा त्रिपुरसुन्दरीका वर्णन किया है। षट्चक्र और षडाम्नायोंका वर्णन विशदतया लिखा गया है। प्रत्येक आम्नायका देवता, उसका सगुण और निर्गुण ध्यान, यन्त्र तथा बीजयन्त्र अच्छे प्रकारसे दर्शाये गये हैं। आगे चल कर किस आम्नायमें किस विधानसे तथा किस आचारसे श्रीमाताकी परिचर्या करनी चाहिए यह सब विशदरूपसे दिखाया गया है। इस स्तोत्रकी संस्कृतमें स्वयं व्याख्या कर तथा प्रमाणमें नाना प्रकारके निगमागम वचनोंको देकर कविताको समझनेके लिए कवि महोदयने सरलता कर दी है। इस सत्प्रयत्नके लिए हम श्रीमान् राणासाहबको हार्दिक धन्यवाद देते हैं। उक्त तीनों पुस्तकें संस्कृतमें हैं, अतः श्रीजगदम्बाके उपासक संस्कृतसाहित्यके मर्मज्ञ-मनीषि ही लेखक महोदयसे मँगवा सकते हैं। हिन्दीभाषाभाषी सर्वसाधारण जनताके समझनेकी वस्तु नहीं है।

शास्त्रशुद्ध पञ्चाङ्गप्रदीप। लेखक व प्रकाशक—श्री गोपाल बलवन्त जोशी पेन्शनर, (चित्रशाला और केतकी पञ्चाङ्गकर्ता) पूना, मूल्य ||) पृ० ३६। भूमिका लेखक—श्री आर० व्ही० वैद्य M. A. B. T. सुपरिण्टेण्डेण्ट श्रीजीवाजी वेधशाला, उज्जैन।

इस पुस्तकमें पञ्चाङ्ग और अश्विन्यारम्भ (रेवत्यन्त) का विषय लिया गया है। भारतवर्षमें अनेक पञ्चाङ्ग प्रतिवर्ष प्रकाशित होते हैं, उन सबमें पारस्परिक बहुत अन्तर रहता है; ऐसी स्थितिमें सर्वसाधारण जनताके लिए यह निर्णय करना बहुत कठिन हो जाता है कि कौनसा पञ्चाङ्ग शुद्ध और कौनसा अशुद्ध है। इसीके लिए लेखकने मराठी भाषामें यह पुस्तक लिखी है। आज विशेषतः "अश्विन्यारम्भका" वाद चैत्र (चित्रा) पक्ष तथा भीटा पक्षमें हैं। चित्रापक्षके विद्वान् सूर्यसिद्धान्तोक्त चित्राका भोग १८० (अश्विन्यारम्भसे क्रान्तिवृत्तके अर्द्ध पर) अंश होनेसे वह तारा निरयणगणनारम्भ स्थानसे पूर्ण ६ राशि पर (कन्याके अन्तमें तथा तुलाके प्रारम्भमें) सूर्यसिद्धान्तके मतसे तथा अनेकों सिद्धान्तोंके मतसे है। अर्थात् जबकि चित्रा तारा निरयणगणनारम्भ स्थान अश्विन्यारम्भसे १८० अंश पर है तो यह स्वयंसिद्ध है कि निरयन अश्विन्यारम्भ स्थान चित्रा तारासे १८० अंश पर ही है ऐसा स्पष्ट है। भीटा पक्षका कहना है कि रेवती विभागमें भीटा नामका (युरोपियन मतसे) एक तारा है; उस तारासे निरयन गणनारम्भस्थान मानते हैं। इन दोनों में प्रायः ४ अंशका अन्तर है। चैत्र पक्षसे भीटागणनारम्भ लगभग ४ अंश पश्चिमकी ओर है और इन दोनोंसे सं० २००१ के वर्षारम्भमें चैत्र पक्षके अयनांश २३°।३′।४८″ आते हैं और भीटा गणनारम्भसे १९°।५′।३४″ आते हैं, इनमें ४ अंशका अन्तर होनेसे २३ अयनांशोंके पञ्चाङ्गमें संक्रान्ति अधिमास ग्रहचार आदिमें बहुत अन्तर रहता है। इन मुख्य दो पक्षमें अश्विन्यारम्भ किस पक्षका शास्त्रशुद्ध और वैदिक परम्परासे है; यह देखना चाहिये, जिसके लिए श्री जोशी महोदयने इस पुस्तकमें भीटा पक्षका खण्डन करते हुए वैदिककालसे चित्रापक्षको सप्रमाण सिद्ध किया है। वैदिककालसे लेकर वराहमिहिर तक तथा तदनुसार साम्प्रतकालकी स्थितिदर्शक एक नक्शा प्रारम्भमें ही दिया है, इससे पुस्तक पढ़नेमें तथा समझनेमें सुविधा होती है और निरयनगणनारम्भ-स्थानका स्वयं निर्णय हो सकता है। भीटागणना सिद्धान्तोक्त नहीं होनेसे इस ताराका शर भी भिन्न है, सिद्धान्तोक्त रेवतीतारा उत्तर शरका है और भीटातारा दक्षिण शर १३ कला पर होनेसे वह तारा सिद्धान्तोक्त रेवती तारा नहीं है, यह भी इस पुस्तकमें सिद्ध किया गया है। पुस्तकमें भारतीय विद्वानोंके चित्रापक्षके लिए दिये हुए अनुकूल अभिप्राय भी दिये हैं, अतः अश्विन्यारम्भके निर्णयके लिए यह पुस्तक श्रेष्ठ है। हिन्दी जनताके लिए यदि लेखक इसका हिन्दी भाषान्तर करा दें तो हिन्दीभाषा-भाषियोंको भी इस पुस्तकसे अवश्य लाभ हो सकता है।

कौटल्यके आर्थिक विचार। श्री जगनलालगुप्त और श्री भगवानदास केला इस पुस्तकके लेखक हैं। पृष्ठ १५२, साइज २०×३०÷१६। भूमिका लेखक दयाशङ्कर दुबे। मूल्य ।||=) प्राप्तिस्थान—भारतीयग्रन्थमाला, दारागञ्ज, प्रयाग।

पुस्तक अपने विषयमें विशेष महत्त्व रखती है। इस पुस्तकको पढ़नेसे मौर्य चन्द्रगुप्त-कालीन भारतकी आर्थिक, राजनैतिक, व्यावहारिक, कलाकौशल, युद्ध, सामाजिक आदि सम्पूर्ण प्रकारकी स्थितिका ज्ञान होता है। २३ अध्यायोंमें ग्रन्थ समाप्त होता है। पुस्तक अपनाने योग्य है।

भव्य विभूतियाँ लेखक—श्रीशङ्करसहाय सक्सेना, प्रकाशक—भारतीय ग्रन्थमाला वृन्दावन। पृ० १४५ साइज २०×३०÷१६। प्रत्येक राष्ट्रको उदाहरण स्वरूप अपने पूर्वजोंका चरित्र व यश ही जीवन देता है। जिस देशके पास अपने महापुरुषोंके चरित नहीं वह उन्नत भी मृतप्राय है, इसी दृष्टिसे यह पुस्तक लिखी गयी है। इसमें महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी आदि महापुरुषोंकी जीवनी बड़े सुन्दर ढङ्गसे लिखी गयी हैं। आशा है पाठक इससे लाभ उठाएँगे। मू० ।|=)

उक्त ग्रन्थमालाकी ३ और पुस्तकें (१ भारतीय शासन, २ मातृवन्दना, ३ नागरिक कहानियां) भी समालोचनार्थ प्राप्त हुई हैं, उनकी समालोचना आगामी अङ्कमें होगी।

उपेक्षा कर इसे वेद-प्रतिकूल सिद्ध करनेका आडम्बर रचने लगा है, अतएव युक्तायुक्त विवेकपूर्ण विचक्षण वृन्दका ध्यान इस ओर आकृष्ट होनेसे इसके साहित्यका प्रकाशन धीरे २ होने लगा है। इसके सिद्धांत और आचारके अनुशीलनसे स्पष्ट है कि इसकी महती संख्या वेदानुकूल है, क्योंकि तान्त्रिकोंकी साधनामें अद्वैतवाद अनुस्यूत रहता है। कुलार्णव तन्त्रका कथन है कि—

'अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्त स्वभाववान्।'

वाराहीतन्त्र कर्त्ताके अनुसार सृष्टि, प्रलय, देवतार्चन, सर्वसाधन, पुरश्चरण, षट्कर्म साधन (शान्ति, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन तथा मारण) तथा ध्यानयोग इन सात विषयोंका प्रतिपादन तान्त्रिक ग्रन्थोंमें रहता है। प्रस्तुत पुस्तक भी तन्त्रशास्त्रकी उपक्रमणिका है। इसमें ४६ विषयोंका प्रतिपादन किया गया है, जिनमेंसे अनेकोंकी प्रयोग-विधि आदिका निरूपण हिन्दीमें किया गया है। इससे साधारण संस्कृतज्ञ भी इन 'अनुभूत योगों' का अनुष्ठान कर लाभान्वित हो सकता है। उपर्युक्त सम्पूर्ण विषय किसी-न-किसी तन्त्रके आधार पर प्रतीत होते हैं। यद्यपि सर्वत्र उनका उल्लेख नहीं किया गया है। विषयसूचीमें भी रुद्रयामल, मुण्डमाला, उड्डामरतन्त्र आदि ग्रन्थोंका अनिर्देश कुछ अरमणीय-सा भासित होता है। संशोधककी असावधानीसे समुपलब्ध अनेक अशुद्धियोंका अस्तित्व इस ग्रन्थकी उपादेयताका ह्रास कर रहा है; तथापि इसमें सन्देह नहीं कि इस पुस्तकके प्रचारसे उदात्त तान्त्रिक भावनाओंकी जिज्ञासा अंकुरित हो उठेगी, जिससे गोप्यतम तन्त्र-साहित्य सर्वसाधारणके लिए सुगम हो जायगा।

—सदाशिव दीक्षित

अष्टांग-योग— ले०—जैनमुनि उपाध्याय श्री आत्माराम जी महाराज। प्रकाशक ला० गेंदामल हेमराज जैन, जनरल मरचैन्ट्स मालरोड़, शिमला पृष्ठ ७२, मूल्य ।।)।

'जैनागमोंमें अष्टांगयोग' नामक पुस्तकमें जैन सम्मत योगके विविध आठ अंगों पर उत्तम प्रकाश डाला गया है। पातंजल योगके आठ अंगोंमें तथा जैन—योगांगोंमें विभेद भी पूरी तरह दिखाया गया है। सिद्धान्तोंमें कहीं कहीं मतभेद होते हुए भी यह तो मानना ही पड़ता है कि उपाध्यायजीका अध्ययन जैनधर्मके विषयमें अधिकार पूर्ण है। कुछेक स्थलोंमें यद्यपि विषयकी गहनताके कारण कहीं २ कुछ कठिनता हो गई है, किन्तु कई स्थल तो बहुत ही उत्तम बन पाये हैं। पुस्तक हर प्रकारसे मनन एवं विवेचना योग्य है।

जीवकर्म-संवाद—लेखक — उपाध्याय श्री आत्मारामजी। प्रकाशक—ला० सोहनलाल जुगल किशोर जैन, तालाब बाजार लुधियाना। पृ० ६२, मूल्य ।।)।

इस पुस्तकके लेखक भी श्री जैनमुनि उपाध्यायजी ही हैं। जीव और कर्मका विभेद व उनके अपने २ गुणधर्म सविस्तार वर्णन किए गए हैं। विशेषता व सुरुचि संवर्द्धनके लिए श्री महावीर कर्म और जीवके मुखसे स्वयं अपना परिचय करवाते हैं, जिससे कि इसे संवादका रूप मिल पाया है। कर्मके आठों भेद अपने वर्णनमें अपने २ रूपको पूरा नहीं पहचान पाये हैं, श्री जिन मुनि महावीर उन्हें तथा जीवको उनके असली रूपका परिचय बताते हैं।

धर्म प्रेमियों तथा विचारकोंके लिये पुस्तक अच्छी विचार सामग्री प्रस्तुत करती है।

प्रसन्नहनुमन्नाटकम्—लेखक और प्रकाशक श्री पं० विश्वेश्वरदयालु वैद्यराज बरालोकपुर इटावा (यू०पी०) पृ० ११४ मूल्य १।

'अनुभूत-योगमाला' मासिकके सम्पादक श्री० वैद्यजीने संस्कृत भाषाके प्रति रुचिसे ही प्रेरित होकर यह नाटक लिखा है। वर्तमान युगमें प्रथम तो संस्कृत नाटकोंका लिखना ही बन्द-सा है, और जो लिखे भी जाते हैं उनका प्रकाशन कठिन है। क्योंकि पढ़ने वाले उत्सुक नहीं हैं। इस कठिन युगमें भी इन

दोनों बाधाओंको पार करके श्री वैद्यजीने उत्साह पूर्वक ग्रन्थका निर्माण करते हुए यह आशा प्रकट की है कि संस्कृत विद्यामें लिखनेका फिरसे प्रचलन हो। निःसन्देह नाटक कथानक बहुत ही अच्छा बनपाया है? और भाषा भी साहित्यकी ही है। संस्कृतके सरल प्रवाहमें क्लिष्टताका कहीं २ समावेश बड़ा ही सुन्दर प्रतीत होता है। हनुमान्का चरित्र चित्रण बहुत ही अच्छा हो पाया है।

यद्यपि कुछेक कल्पनाओंको भी इसमें सत्य ही माना गया है, फिर भी यह एक साहित्यकी मौलिक देन है। हम इस ग्रन्थ एवं प्रयत्नका स्वागत करते हुए आशा करते हैं कि जनता भी स्वागत करके ऐसे लेखकोंका उत्साह संवर्धन करेगी।

छपाई और कागज सुन्दर है किन्तु मुखपृष्ठ पर युद्ध-जन्य कठिनाइयां स्पष्ट झलक रही हैं।

सुलभज्योतिषज्ञान — पृष्ठ ३०० मूल्य ४) रु० छपाई कागज उत्तम। लेखक और प्रकाशक— पं० वासुदेव सदाशिव खानखाजे सुलभ-ज्योतिष ज्ञान कार्यालय, विलासपुर सी० पी०।

हिन्दीमें ज्योतिर्विज्ञान (विशेष कर) फलादेशके सम्बन्धमें यह पहली पुस्तक है। प्राच्य-पाश्चात्य ज्योतिषके अनेकों ग्रन्थोंका परिशीलन करनेके अनन्तर श्री खानखोजेजीने यह ग्रन्थ हिन्दी भाषामें लिखा है, इससे संस्कृत न जाननेवाले लोगोंका बड़ा उपकार होगा। पुस्तककी प्रस्तावना ही कई ज्ञातव्य बातोंसे परि पूर्ण है। ऐतिहासिक दृष्टिसे भी ज्योतिष फलितकी सत्यता सिद्ध की गई है। ज्योतिषके प्रारम्भिक ज्ञानसे लेकर अन्त तक पुस्तक सुन्दर क्रमबद्धरूपमें लिखी गई है। पण्डितजीका परिश्रम स्तुत्य है। यद्यपि ग्रहोंकी अवस्था आदि कुछ एक स्थलोंमें सम्भवतः छपनेमें कुछ अशुद्धि रह गई है। तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं कि पण्डितजीने उक्त पुस्तक लिख कर हिन्दीमें ज्योतिर्विज्ञान साहित्यके एक महान् अभावकी पूर्ति की है, तदर्थ हिन्दी-जगत को पण्डितजीका कृतज्ञ होना चाहिए और प्रत्येक हिन्दी-भाषी ज्योतिर्विज्ञान प्रेमीको इसे अवश्य अपनाना चाहिए।

सहयोगियोंका स्वागत

मासिक—

वैदिक-धर्म—सम्पादक – श्री पाददामोदर सात्व-लेकरजी। वार्षिक मूल्य ५)। औंध (सतारा)

वैदिकधर्मके गूढ़ विषयों पर ज्ञानपूर्ण लेखोंके संग्रह का एक मात्र पत्र हैं। विशेष तया विवादके विषय ईश्वर और वेद रहते हैं।

कल्याण—सम्पादक श्री हनुमान्प्रसाद पोद्दार। वार्षिक मूल्य ५≶)। धार्मिक विषयों विशेषतया व्यावहारिक धर्म पर विचार पूर्ण लेख कविता आदिका संग्रह उत्तम होता है। अपने ढङ्गका एक मात्र मासिक पत्र है। गोरखपुर।

कल्पवृक्ष—सम्पादक श्री दुर्गाशङ्कर नागर। उज्जैन। वार्षिक मूल्य २॥)। अध्यात्म विद्याका एक मात्र पत्र।

मानव-धर्म—सम्पादक श्री दीनानाथ भार्गव 'दिनेश'। मासिक। वा० मूल्य ५)। देहली। इसमें भी धर्मके व्यावहारिक पहलू पर ही विचार किया जाता है।

भारती—सम्पादिका शान्ताकुमारी। जम्मू। वा० मू० ६)। मासिक। जम्मूमें प्रथम साहित्यिक पत्रिका।

उषा—सम्पादिका शकुन्तला सेठ। जम्मू। वार्षिक मूल्य ६) मासिक। जम्मूसे प्रकाशित होने वाली स्त्रियोंकी दूसरी पत्रिका। सुन्दर पठनीय। इसे जन्मकालसे ही सरकारी कोपका भाजन बनना पड़ रहा है।

वीणा— सम्पादक—शान्तिप्रिय द्विवेदी। इन्दौर। मासिक। वा० मूल्य ४)। साहित्यिक पत्रोंमें अच्छा स्थान रखती है।

अनुभूत-योग-माला— सम्पादक—विश्वेश्वरदयालु वैद्यराज। वार्षिक मू० ४)। बरालोकपुर इटावा। आयुर्वेद विषयकी अच्छी पत्रिका है।

धन्वन्तरि—सम्पादक—वैद्य बांकेलाल गुप्त। वा० मू० ५≶)। विजयगढ़ (अलीगढ़)। आयुर्वेदकी सर्वोत्तम पत्रिका विशेषांक महत्त्वपूर्ण होते हैं। इस वर्षका क्षय रोगांक बहुत उत्तम है।

साप्ताहिक—

वीर अर्जुन—सम्पादक श्री रामगोपाल जी विद्यालङ्कार और श्री कृष्णचन्द्रजी विद्यालङ्कार। वा० मू० ८) देहली। हिन्दीका सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक एव राजनीतिक पत्र।

संसार—सम्पादक बाबूराव विष्णुराव पराड़कर। काशी। वा० मू० ६)। काशीका उत्तम सामयिक पत्र।

प्रताप—संस्थापक स्व० गणेश शंकर विद्यार्थी। वा० मू० ५)। कानपुरका एक मात्र सामयिक राजनैतिक पत्र।

नवयुग—सं० अवनीन्द्रकुमारजी विद्यालङ्कार। वा० मू० ७॥)। दिल्ली। सिनेमा संसारको छोड़कर साहित्यिक एवं राजनैनिक क्षेत्रमें आ रहा है। उत्तम सचित्र।

कर्मवीर—सं० माखनलालजी चतुर्वेदी। वा० मूल्य ४)। खण्डवा सी० पी०। सी० पी०का उत्तम साहित्यिक पत्र।

लोकमान्य—सं०-पं० हरिश्चन्द्रजी विद्यालङ्कार। वा० मू० ६)। दिल्ली। नीति हिन्दुसभाई है। लेखोंका अच्छा संग्रह होता है।

विश्वबन्धु—सं० श्री 'माधव'। लाहौर। एक प्रतिका मूल्य -)। पंजाबका सर्वश्रेष्ठ प्रगतिशील साप्ताहिक व दैनिक।

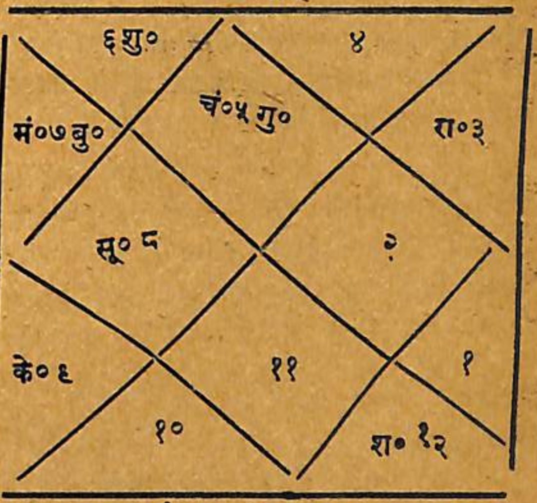
इनके अतिरिक्त दैनिक 'हिन्दुस्तान' 'वीर अर्जुन' 'विश्वबन्धु' 'वीरभारत'। साप्ताहिक 'सिद्धान्त' 'स्वराज्य' 'आलोक' 'लोकवाणी' 'नवज्योति' 'वेङ्कटेश्वर-समाचार' और मासिक 'विक्रम' 'चण्डी' 'शान्ति' 'मधुकर' आदि ६० के लगभग जो पत्रपत्रिकाएं परिवर्तनमें निरन्तर आ रही हैं उन सबका हम 'श्रीस्वाध्याय' की ओरसे अभिनन्दन करते हैं।

सम्माननीय ग्राहकोंकी जन्म-कुण्डलियां

गताङ्ककी सूचनाके अनुसार कुछ महानुभावोंने सम्मान्य ग्राहक बनकर अपनी जन्म-कुण्डलियां प्रकाशनार्थ भेजी हैं, उनमेंसे स्थानाभावके कारण केवल एक कुण्डली यहां प्रकाशित कर रहे हैं। भारतके ज्योतिर्विज्ञान विशेषज्ञ इस पर अपना विचार अभिमत लिखकर नीचे लिखे पते पर भेजें। जिनका फलादेश अधिक ठीक निकलेगा वे सज्जन श्रीस्वाध्यायसदन-संस्थाकी ओरसे भी पुरस्कृत सम्मानित किये जायेंगे। प्रस्तुत कुण्डलीमें विशेषतया नेत्ररोग और राज्यपक्ष पर विशेष प्रकाश डालें।

सं० १९९५ मार्गशीर्ष कृष्ण ६ भौमेष्टम् ४८। २५ मघा भे १।४८, सूर्यः ७।२।३०।३१, लग्नम् ४।२८। ५२।५, दशमलग्न १।१९।५८।१७, चन्द्र ४।२३।४८।१० मं० ६।०।३१।२०, बु० ६।१३।१५।१५, गु० ४।२१।२१।५ शु० ५।२५।१३।३२, श० ११।६।०।२, रा० २।४।५४।२५ चलितमें मंगल बुध धनभावमें और शनि सप्तम भावमें आ गया है।

जन्माङ्कम्



सं० १९९२ सूर्यः ६।७ से सं० २०१० सू० ६।७ तक विंशोत्तरी राहु महा दशा चलती है।

पता—कुंवर मोतीसिंहजी मु० उमरकोट पो० झकनावदा वाया रतलाम (सी० आई)

श्रीयुत प्रोफेसर हंसराजजी अग्रवाल महोदय (लायलपुर) का जन्म-इष्टकाल प्राप्त न होनेसे इस अङ्कमें कुण्डली प्रकाशित न हो सकी। आगामी अङ्कमें दी जायेगी।

आभार-प्रदर्शन और आत्म-निवेदन

महिमामयी कल्याणकारिणी जगज्जननी श्रीजगदम्बाकी असीम अनुकम्पासे 'श्रीस्वाध्याय' अपने चार वर्षके शैशवकालसे पार हुआ। पंचम वर्षमें प्रवेश करते हुए 'श्रीस्वाध्याय' उन महानुभावोंकी ओरसे अपनी दृष्टि नहीं हटा सकता, जिन्होंने इसे सर्वप्रकार का सहयोग दिया। पत्रके संरक्षक धर्ममार्त्तण्ड बघाटमहीमहेन्द्र श्री १०५ मन्महाराज दुर्गासिंहजी बहादुर सोलननरेश महोदय और श्री १०५ मान् रावराजा गिरिधारीशरणसिंहजी महोदय भरतपुरका धन्यवाद करनेके लिए हमारे पास उपयुक्त शब्द नहीं; जिनकी छत्रछायामें 'स्वाध्याय' यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न हो रहा है और होता रहेगा। आचार्यचरण श्री १०८ पूज्यपाद अमृतवाग्भवजी महाराजने हिमालयकी उन घाटियोंमें जहां बैठकर ऋषि मुनियोंने सत्यका दर्शन किया था—'स्वाध्याय' को अपने सत्यज्ञानसे, तपः-शक्तिसे, विद्या-दानसे जीवन प्रदान किया; उन्हें धन्यवाद देने योग्य हम कहां हैं ?

परमसाध्वी भगवद्भक्तिपरायणा वयोवृद्धा श्री १०५ मती माजी महाराणी साहिबा बघाटराज्य, व श्रीमान् कुं० शिवसिंहजी सेशनजज महोदय बघाटराज्य और श्रीमान् सरदार कुं० रणदीपसिंहजी, श्री १०५ मान् महाराज प्रभुनाथसिंहजी, श्री १०५ मान् राजकुमार मानसिंहजी आदि सहायक वर्गने आरम्भसे ही जो क्रियात्मक सहयोग दिया है उसके लिए हम आपके चिरकृतज्ञ हैं।

श्रद्धेय महामहोपाध्याय श्री पं० परमेश्वरानन्दजी प्रिन्सिपल स० ध० संस्कृतकालेज लाहौर 'श्रीस्वाध्याय' को सम्पूर्ण रूपेण आत्मीय समझते हुए सर्वदा सहायता करते रहते हैं, तदर्थ धन्यवादके लिए समुपयुक्त शब्दोंके अभावमें कृतज्ञता प्रकट कर हम अपनी मनस्तुष्टि करते हैं।

श्री पं० देवकीनन्दनजी कथावाचक यादवकीर्तन मण्डल अम्बाला शहरने इस वर्ष पत्रका सहायकत्व स्वीकार कर, तथा वि० भू० श्री पं० मोहन शर्माजी विशारद इटारसीने आरम्भसे ही 'श्रीस्वाध्याय' की उत्तरोत्तर निःस्वार्थ सहायता कर हमें पर्याप्त सहयोग दिया तदर्थ हम आपके कृतज्ञ हैं।

श्री महामहोपाध्याय पं० गिरिधरशर्माजी चतुर्वेदः, श्री वि० भू० पं० दीनानाथजी शास्त्री, श्री पं० जयदेव जी विद्यालंकार (वेदभाष्यकर्त्ता) श्री डा० वासुदेवशरणजी अग्रवाल, कविसम्राट् श्री पं० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय, श्री पं० मोतीलालजी शास्त्री वेदवाचस्पति, श्री पं० बलजिन्नाथजी शास्त्री, डा० श्री नाथजी तिक्कू, श्री पं० गंगाप्रसादजी ज्यो०, श्री पं० माधवाचार्यजी शास्त्री, श्री पं० विशुद्धानन्दजी गौड़ ज्योतिषाचार्य, श्री प्रो० बी० सी० महता आदि विद्वान् लेखक महानुभावोंका भी हम हार्दिक धन्यवाद करते हैं, क्योंकि पत्रके वास्तविक निर्माता तो ये विद्वद्वर्ग ही हैं।

हमारे परमस्नेही श्री पं० दयानन्दजी जोशी महोदय 'श्रीस्वाध्याय' परिवारके लिए पूर्ण सहानुभूति रखते हुए पत्र-प्रकाशनके समय हमें अपने स्थान पर सब प्रकारकी सुविधाएं प्रदान कर पत्रकी उन्नतिमें महत्त्वपूर्ण भाग ले रहे हैं, इसके लिए आपके जितने भी धन्यवाद किये जायें थोड़े हैं। श्री विजयकुमारजी वर्मा हमारी अनुपस्थितिमें व्यवस्थापकका सम्पूर्ण कार्यभार निःस्वार्थभावसे सम्भालकर जो पूर्ण सहयोग दे रहे हैं तदर्थ आपका विशेष धन्यवाद है।

श्री प्रो० हंसराजजी अग्रवाल M. A., श्री पं० गोविन्दजी मिश्र, श्री पं० शक्तिप्रसादजी, श्री पं० देवकीनन्दनजी, श्री राजकुमार मोतीसिंहजी, श्री बा० हंसराजजी, श्री ला० शिवप्रसाद बांकेलालजी, श्री पं० कन्हैयालालजी, श्री सेठ सत्यनारायणजी गोयनका, श्री सेठ हीरालालजी सूतवाले, श्री कुं० सुरेन्द्रदेवजी, श्री पं० चन्द्रदत्तजी शास्त्री, श्री पं० हरजसरायजी वैद्य, तथा अन्य जिन मित्रोंने 'श्रीस्वाध्याय' के प्रचार में पूर्ण सहयोग दिया उनके भी हम आभारी हैं।

कार्तिककी तेजी-मन्दी

[लेखक—श्री धर्मचन्द्रजी खेमका 'चन्द्र']

ज्योतिषियों द्वारा बतलाई हुई तेजी-मन्दी पर लोगोंका बराबर अविश्वास बढ़ता जा रहा है, और वह अकारण नहीं है । ज्योतिषके नाम पर नामधारी बहुरूपिए ज्योतिषियों (जिनका हेड आफिस आज भटिण्डासे कल पूना पहुँच जाता है) द्वारा लोग काफी ठगे जा चुके हैं; किन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि ज्योतिषशास्त्रके आधार पर तेजी-मन्दी पर की हुई सभी भविष्यवाणियाँ गलत साबित होती हैं। जबसे मुझे तेजी-मन्दी जाननेका शौक हुआ, इधर लगातार मैंने तेजी-मन्दीके साहित्य का अध्ययन किया है, तथा इस विषयके विशेषज्ञों से निकट सम्पर्क स्थापित किया है और उससे जो अनुभव हुआ उसके फलस्वरूप यह लेख आपके सामने है । केवल कार्तिक पर लेख इस लिए जा रहा है कि "श्रीस्वाध्याय" के पाठकोंने इसे पसन्द किया तो आगामी अङ्कसे त्रैमासिक दिया जाएगा। यह लेख शुद्ध गणित ज्योतिष द्वारा निकाली गई तेजी-मन्दीकी सचाई साबित करनेके लिये दिया गया है; न कि इसमें आई हुई बातों पर कोई कमाई करनेके लिए । इस बात पर विशेष रूपसे ध्यान दिया जाना चाहिए कि यह कितने टका फीसदी मिलान खाता है, इसे यदि आप "श्रीस्वाध्याय" के सम्पादक महोदयको सूचित करेंगे तो मुझे आपकी राय उत्साहित करेगी।

चांदी-सोना—कार्तिककी ग्रह स्थिति स्पष्ट संकेत कर रही है कि, इस महीने में बड़ी भारी घटाबढ़ी रहेगी।

सोना—दशहरेके दिन जो भाव रहे हैं; १ या २ अक्टूबरको उससे तेज रहेंगे। ४ अक्टूबरके आसपास आई हुई मन्दी ६ तक कभी तेज और कभी मन्दी रहेगी। उसके बाद १६ तक मामूली घटबढ़में बाजार रहेगा। २० या २२ से अक्टूबर के अन्त तक बाजार बढ़नेकी पूरी सम्भावना है।

चान्दी—२ अक्टूबर तक सोने पर जो राय है वही यहाँ समझिए। ८ तक नरमाईकी लाइन रहेगी। ११ के आसपासकी मन्दी १७ तक तेजीमें परिणत होती रहेगी। आगे तेजी आनेकी पूरी सम्भावना है।

शेयर—दशहरेके दिन जो भाव रहे हैं ३ अक्टूबर तक वे बढ़ते हुए दिखाई देंगे। ५ की मन्दी ७ को तेजीमें बदल जायगी; फिर ६ की मन्दी ११ को तेजी, १३ के भाव घटबढ़ कर १७ तक तेजी की ओर रहेंगे, उसके बाद जो भाव रहेंगे वे इस महीनेके अन्त तक खूब बढ़ेंगे।

रुई—दशहरेके आसपासकी तेजी, मन्दीका रूप धारण कर लेगी। अक्टूबरके प्रथम सप्ताहमें तीसरे और चौथे दिन घटबढ़ रहनेकी सम्भावना है। दूसरे सप्ताहके शुरूमें बाजार गिरेगा, उसके बाद कुछ बढ़ेगा। मासान्तमें बाजार फिर गिर जायगा।

बत्तीसवां अ० भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, जयपुर

[लेखक—श्रीरामगोपालजी विद्यालङ्कार, सम्पादक दैनिक और साप्ताहिक 'वीर अर्जुन']

अ० भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनको जयपुर का निमन्त्रण जिस प्रकार विक्षोभकी परिस्थितियोंमें मिला था, उसी प्रकार विक्षोभके ही वातावरणमें से निकलकर यह अधिवेशन सम्पन्न भी हुआ। हरिद्वारमें (इकतीसवें सम्मेलनमें) जिन अनेक स्थानोंसे सम्मेलनका आगामी अधिवेशन निमन्त्रित किया गया था उनमें इतनी स्पर्धा थी कि किसी एक स्थानका निर्णय करनेके लिये कुछ सज्जनोंकी एक उपसमिति नियुक्त करनी पड़ी थी। इस उपसमितिने अपना निर्णय जयपुरके पक्षमें मुख्यतया इस कारण दिया था कि उससे कुछ ही समय पूर्व रियासत जयपुरमें हिन्दीको राज-भाषा बनानेका आन्दोलन होकर चुका था और समझा यह गया था कि जयपुर में सम्मेलनका अधिवेशन होनेसे उस आन्दोलनको विशेष बल मिलेगा।

हरिद्वारका अधिवेशन सन् १९४३ के मई मासमें हुआ था, जोकि सम्मेलनके वार्षिक अधिवेशनोंके परम्परागत समयसे विलम्बित था। साधारणतया ये अधिवेशन दिसम्बरके अन्तमें होते हैं। इस विलम्ब को ठीक करनेके लिये तथा भैणी साहब (लुधियाना) के महन्तजी द्वारा होलियोंकी छुट्टियोंमें निमन्त्रित विशेषाधिवेशनको अवसर देनेके लिये, हरिद्वारकी उपसमितिने यह भी सिफारिश की थी कि जयपुरका अधिवेशन दिसम्बरके अन्तमें ही किया जाय। सम्मेलनने उक्त सिफारिशको स्वीकार कर लिया था। परन्तु जयपुर-सम्मेलनकी भाग्य-रेखा इतनी सरल नहीं थी। उसे अनेक विघ्न-बाधायें पार करना था।

दिसम्बरमें जब जयपुर-अधिवेशनके लिये सभापतिका चुनाव होनेका समय समीप आया तब सम्मेलनकी स्थायी समितिके उन इलाहाबादी सदस्योंने जोकि अन्य सदस्योंकी उदासीनवृत्तिके कारण बहुधा सब निश्चय स्वयं कर लिया करते थे, चुनाव सम्बन्धी कई एक वैधानिक आपत्तियाँ उठाकर चुनाव स्थगित कर दिया, क्योंकि जिन सज्जनको वे सभापति के पद पर सुशोभित हुआ देखना चाहते थे उनको दिसम्बरके चुनावमें बहुमत प्राप्त नहीं हो सका था।

सभापतिके दुबारा चुनावके लिये नयी तिथियाँ नियत करके जयपुर-अधिवेशन मार्चमें करनेका निश्चय किया गया। किन्तु तबतक स्थायी समितिका गृह-कलह शान्त नहीं हो पाया था, इस कारण मार्च की घड़ी भी टल गयी। मार्चके पश्चात् जुलाईका समय रखनेकी सोची गयी, परन्तु उसे स्वागत-समिति ने स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार तीन वार की टालमटोलके पश्चात् सितम्बरके अन्तमें जाकर यह सम्मेलन सम्पन्न हो सका। भय था कि जिन कारणों से जयपुर अधिवेशन इतनी वार स्थगित होता रहा है वे सितम्बरमें भी अपना प्रभाव न डालें, परन्तु यह प्रसन्नताका विषय है कि उन कारणोंकी प्रतिध्वनि जयपुरमें सुनाई देने पर भी सम्मेलनका अधिवेशन निर्विघ्नता और सफलतासे सम्पन्न हो गया।

यह सम्मेलन अनेक दृष्टियोंसे प्रायः अभूतपूर्व रहा। इस अधिवेशनके सभापति महोदय त्यागमूर्ति गोस्वामी गणेशदत्तजीने अपना पद सम्भालनेसे पहले ही अपने व्यवहार द्वारा प्रकट कर दिया था कि वह यह पद सम्मेलनके अन्य अधिकतर सभापतियोंकी भांति केवल शोभाके लिये ग्रहण नहीं करेंगे, अपितु इसके उत्तरदायित्वका निर्वाह कर्मण्यतापूर्वक करेंगे। जयपुर जाते हुए वह अपने साथ सम्मेलनको भेंट करनेके लिये पच्चीस हजार रु० की थैली संग्रह करके लेते गये थे। सम्मेलनकी कार्यवाहीका संचालन भी उन्होंने प्रशंसनीय कुशलता, प्रसन्नता, निष्पक्षता तथा तत्परतासे किया। यह सब देखकर

हिन्दी जगत्‌ने श्री० गोस्वामीजीसे अभी से अनेक आशायें बांध ली हैं कि वह हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को न केवल एक लोकप्रिय संगठन बनानेमें सफल होंगे, अपितु उस द्वारा कुछ उपयोगी कार्य भी करके दिखलावेंगे।

जयपुर-अधिवेशनमें यदि प्रतिनिधियोंकी नहीं तो दर्शकों और प्रतिनिधियोंकी मिलकर उपस्थिति अवश्य असाधारण थी। रिपोर्टरोंने इसका अन्दाजा बीस हजार तक किया है। इतनी उपस्थिति हिन्दी साहित्य सम्मेलनोंके अधिवेशनोंमें अपवादस्वरूप ही कभी होती है। दर्शकों और प्रतिनिधियोंमें उत्साह भी बहुत था।

जयपुरके दीवान सर मिर्जा इस्मायलने अधिवेशनका उद्‌घाटन करते हुए यद्यपि हिन्दीको राष्ट्रभाषा नहीं माना, परन्तु अनेक प्रमुख और प्रभावशाली वक्ताओंने उनके विचारोंका भली प्रकार खण्डन कर दिया। पं० माखनलाल चतुर्वेदी, बा० पुरुषोत्तमदास टण्डन और श्री० कन्हैयालाल मुंशी सरीखे प्रभावशाली व्यक्तियोंने सर मिर्जाकी बातका खण्डन किया। श्री मुन्शीने राष्ट्रभाषा परिषद्‌का सभापतित्व करते हुए यहाँ तक कह दिया कि "हमारी भाषामें जो संस्कृत शब्द आ गये हैं वे इमारतमें उन ईंटों सरीखे नहीं हैं, जिनको राजनीतिक अथवा साम्प्रदायिक आवश्यकताओंसे कोई राज इधर उधर सरका सके, वे तो हमारी सहस्रोंवर्षोंकी भावना तथा संस्कृति के प्रतीक हैं और हमारी भाषामें वे अविच्छेद्य रूपसे गुंथे हुए हैं। यदि मुसलमान हिन्दीको राष्ट्रभाषा नहीं बनाना चाहते तो अन्तःप्रान्तीय व्यवहारके लिये हिन्दुओं और मुसलमानोंको दो पृथक् भाषायें रखनी पड़ेंगी और भविष्यमें जब कभी हिन्दू-मुस्लिम एकता होगी तब वे भी मिलकर एक हो सकेंगी।"

प्रस्ताव भी जयपुर-सम्मेलनमें कई एक असाधारण महत्त्वके पास हुए हैं। आल इण्डिया रेडिओ की हिन्दी-विरोधी नीतिका सम्मेलन प्रतिवादमात्र करके शान्त नहीं हो गया, उसने हिन्दी-प्रेमियोंसे रेडियोका तबतक 'बहिष्कार' भी करनेका अनुरोध किया है जबतक कि रेडिओकी उक्त नीतिमें सुधार नहीं हो जाता। इस प्रस्तावके प्रसार तथा इस पर अमल करानेके लिये सम्मेलनने एक समिति भी नियुक्त कर दी है।

इस प्रस्ताव पर आचरण करनेके लिये डा० रामकुमार वर्मा, श्री वंशीधर देहाती और श्री गुलाबराय आदि सज्जनोंने आलइण्डिया-रेडिओके प्रतिष्ठित पदोंसे तुरन्त ही त्यागपत्र देकर जो मार्ग-प्रदर्शन किया है, आशा है कि वह अभीष्ट फलप्रद होगा। श्री सभापतिजी का तथा सम्मेलनके नये पदाधिकारियोंका भी संकल्प है कि वे इस आल इण्डिया रेडिओकी भाषा-नीतिमें अभीष्ट परिवर्तन होने तक शान्त होकर नहीं बैठेंगे।

रियासतोंमें हिन्दीकी स्थितिकी जांच करनेके लिये भी एक समिति नियुक्त की गयी है और इन्दौर तथा ग्वालियरके महाराजाओंसे अनुरोध किया गया है कि वे मध्यभारतमें एक हिन्दी-विद्यापीठ स्थापित करनेकी अपनी योजनाको शीघ्र ही कार्यान्वित करनेकी कृपा करें।

हिन्दीके प्राचीन महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंके प्रकाशन तथा सम्मेलनके अन्य उपयोगी कार्योंके लिये सात-लाख रुपयेकी एक निधि संग्रह करनेका भी जयपुर-अधिवेशनमें निश्चय किया गया है। इस निधिका आरम्भ तो सुन्दर ढंगसे हुआ है। श्री कन्हैयालाल मुंशी सरीखे गुजराती-साहित्यकारने इस निधिमें इकीससौ रुपये दिये हैं। लगभग दसहजार रुपया जयपुरमें तत्काल एकत्र हो गया था। और आशा है कि गोस्वामी गणेशदत्त जी सरीखे धन-संग्रह-कुशल व्यक्तिके सभापतित्व-कालमें यह निधि अपूर्ण नहीं रहेगी।

जयपुर-अधिवेशनका सभापति चुननेके प्रसंगमें सम्मेलनके संगठन तथा नियमावली की जो शिथिलतायें पिछले दिनों सामने आयी थीं; उन सबका स्थायी प्रतिकार तो यद्यपि जयपुरमें नहीं किया जा सका, तथापि उन सबकी ओर सम्मेलनके प्रतिनिधियोंका ध्यान अभीष्ट मात्रामें आकृष्ट हो गया और आगामी वर्षके लिये पदाधिकारियोंका जो चुनाव हुआ है उससे प्रकट है कि प्रतिनिधि इस दिशामें पर्याप्तरूपेण जागृत

हो चुके हैं। जिन सज्जनोंसे यह शिकायत थी कि वे केवल अपनी मर्यादा तथा प्रभावकी वृद्धिके लिए सम्मेलनके पदाधिकारी बन जाते हैं उनमें से एक भी किसी भी पद पर नहीं चुना गया। ठाकुर श्रीनाथसिंह सरीखा ऐसा व्यक्ति प्रबन्ध-मन्त्री चुना गया है जिसने स्वयं अपने आपको इस पदके लिये उपस्थित किया था। आशा है कि जिस स्वयंसेवाकी भावनासे प्रेरित होकर उन्होंने अपना चुनाव करवाया है, वह वर्ष भर कार्यमें भी वैसी ही तत्परता प्रकट करते रहेंगे। सब मिलाकर हम कह सकते हैं कि जयपुर-अधिवेशन हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके इतिहासमें एक युगकारी अधिवेशन सिद्ध होनेकी पूरी आशा है।

आत्म-निवेदन और आभार-प्रदर्शन

महामहिमामयी कल्याणकारिणी जगज्जननी श्रीजगदम्बाकी असीम अनुकम्पासे 'श्रीस्वाध्याय' अपने तीन वर्षके बालारिष्ट कालसे पार हुआ। पाठक महानुभावोंके सरल-तरल- हृदयसे हिलोरित होकर उत्साह प्राप्त करता हुआ यह 'स्वाध्याय' यज्ञ उत्तरोत्तर वृद्धि पा रहा है। इस यज्ञके करनेमें निसन्देह इस कण्ट्रोल (कण्ठ-रोध) कालमें सामग्रियोंके जुटानेमें बड़ी-बड़ी बाधाओं का सामना करना पड़ा। कागज़की कठिनाई, प्रेसकी कठिनाई और अनेक कठिनाइयोंने चारों ओरसे घेर कर 'स्वाध्याय'यज्ञमें विघ्न डालनेका पूरा प्रयत्न किया; परन्तु जिसके रक्षक भगवान् हों और जिसके पीछे जनताके सहयोगका बल हो, जो कर्मयोगका आश्रय लेकर खड़ा हुआ हो, वह सांसारिक विपत्तियोंके सामने गिड़गिड़ाना और घुटने टेकना नहीं जानता। हम सत्-साहस और सततप्रयत्नसे आगे बढ़ते रहे, भीषण पथको पार कर लिया और आज अपने प्रेमी पाठकों की मंगलकामना करते हुए हमने अपने चतुर्थवर्षमें प्रवेश किया है। यह सब महामायाके कृपा कटाक्षका परिणाम है।

तप किसी भी प्रकारका हो उसमें कठिन साधना अनिवार्य है। धैर्य, साहस और श्रद्धाकी पूरी पूरी आवश्यकता है। 'स्वाध्याय' तपरूप है; हम इस तप में तपे और पाठकोंको भी सहयोगके लिए निमन्त्रण दिया। तपका फल मधुर है; परन्तु पूरा निभाना प्रयत्न और परिश्रम चाहता है। 'स्वाध्याय' के चलाने में हमने एक ही लक्ष्य रक्खा—

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'

कर्म हम करते रहें, फल देने वाला जैसा चाहे वैसा फल दे। फलस्वरूप पाठकोंको ज्ञान-विज्ञान, ज्योतिष, शिक्षा, साहित्य, स्वतन्त्रता आदि सम्बन्धी साहित्य देनेमें हमने कुछ न उठा रक्खा।

'श्रीस्वाध्याय' हम अपने किसी स्वार्थके लिए नहीं चला रहे, अपितु इस यज्ञमें स्वार्थकी आहुति देकर हम भगवत्-शक्तिका आवाहन कर रहे हैं। उस शक्ति का, जिसके द्वारा प्रज्ञा प्राप्त करके आत्मा जागृत हो जाय, मन महक उठे, जीवनका सञ्चार हो जाय, धर्म का बोध हो, ज्ञानका परिशोध हो और दुष्कर्मोंका अवरोध होकर राष्ट्रका कल्याण हो।

इस प्रकार हम प्रयत्न शील हैं, सेवा-कार्य कर रहे हैं, यह सहृदय प्रेमी पाठकों पर निर्भर है कि वे हमारी सेवाके साथ कितनी सहानुभूति रखते हैं। पाठकोंकी सहानुभूति 'स्वाध्याय' का बल है। 'स्वाध्याय' के बलसे कोई भी राष्ट्र, कोई भी जाति और कोई भी धर्म उन्नत हुए बिना नहीं रह सकता। 'स्वाध्याय' आपका है, आप जितना इसे ग्रहण करेंगे, उतनी ही देश में ज्ञान-यज्ञकी वृद्धि होगी। तप और पवित्रताका वातावरण बनेगा, जिसमें विचर कर हम सब सुखी होंगे, स्वतन्त्र होंगे और मुक्त होंगे।

आभार-प्रदर्शन

चतुर्थवर्षमें प्रवेश करते हुए 'श्रीस्वाध्याय' उन महानुभावोंकी ओरसे अपनी दृष्टि नहीं हटा सकता, जिन्होंने इसे जन्म दिया, घुटनियों चलाया और अब खड़ा किया। अभी 'स्वाध्याय' अपने पैरों पर पूर्णरूपेण खड़े होने योग्य नहीं है। क्या करें! देशका वातावरण ही ऐसा है, अतः वे महानुभाव अपने इस बढ़ते हुए शिशु की रक्षा करेंगे, ऐसी हमें पूर्ण आशा है। पत्रके संरक्षक धर्ममार्तण्ड बघाटमहीमहेन्द्र श्री १०५ मन्महाराज दुर्गासिंहजी बहादुर सोलन नरेश महोदय और श्री १०५ मान् रावराजा गिरिधारीशरणसिंहजी महोदय भरतपुरका धन्यवाद करनेके लिए हमारे पास उपयुक्त शब्द नहीं; जिनकी छत्रछायामें 'स्वाध्याय' यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न हो रहा है और होता रहेगा। आचार्यचरण श्री १०८ पूज्यपाद अमृतवाग्भवजी महाराजने हिमालयकी उन घाटियोंमें जहाँ बैठकर ऋषि मुनियों ने सत्यका दर्शन किया था, 'स्वाध्याय' को अपने सत्य-ज्ञानसे, तपःशक्तिसे, विद्या-दानसे, जीवन प्रदान किया। उन्हें धन्यवाद देनेके योग्य हम कहाँ हैं?

परमसाध्वी भगवद्भक्तिपरायणा वयोवृद्धा श्री १०५ मती माजी महाराणी साहिबा बघाटराज्य, श्रीमान् कुं० शिवसिंहजी सेशनजज महोदय बघाटराज्य और श्रीमान् सरदार कुं० रणदीपसिंहजी महोदय आदि सहायकवर्गने आरम्भसे ही जो क्रियात्मक सहयोग दिया है उसके लिए हम आपके चिरकृतज्ञ हैं। गतवर्ष से हमारे सहकारी श्री पं० बलजिन्नाथजी शास्त्री महोदयने बहुतदूर (काश्मीर) रहते हुए भी समय-समय पर सम्पादन कार्यमें जो सहयोग दिया है उसके लिए उन्हें विशेष धन्यवाद देना आत्मीयतासे पृथक् करना है। आत्मोन्नतिसे जो सुफल प्राप्त होताहै उसके आनन्दका अनुभव भी उसी व्यक्ति को होता है, इसके लिए वह किसीके धन्यवादकी अपेक्षा नहीं रखता, अस्तु।

'श्रीस्वाध्याय' ने इन तीनवर्षोंमें जो उन्नति की उसका श्रेय विद्वान लेखकों और ग्राहकोंको है, अतः हम अपने उन सभी मान्य विद्वान् लेखकों और प्रेमी ग्राहकोंके हृदयसे आभारी हैं, जिन्होंने अपनी मौलिक रचनाएं भेजकर तथा स्वयं ग्राहक बनकर एवं बनाकर सहयोग दिया है। समयाभाव और स्थलसङ्कोचके कारण विद्वद्वर श्री पं० हनुमान् शर्माजीका 'हिन्दूपर्व त्यौहार' व्याकरणाचार्य श्रीपं० मनोहरलालजी शास्त्री M.A. का 'शिक्षा और श्रद्धा' श्री पं० विश्वम्भरनाथजी शर्मा कौशिककी कहानी, श्री पं० सूर्यनारायणजी व्यासका 'ज्योतिर्विज्ञान में उदारता और इतिहासकी संगतिसम्भावना' श्री पं० रामदत्तजी शर्मा शास्त्री 'विमल' का 'आर्यजातिका जन्म स्थान, श्री पं० ईशनारायणजी जोशीका 'ये आँखें क्या कहती हैं' श्री सा० र० पं० गोवर्द्धनदासजी महताका 'साकेतमें यशस्वी महाराज दशरथ' शीर्षक लेख, तथा अन्य कई महानुभावोंकी मौलिक रचना और कविताएं इस अङ्कमें प्रकाशित नहीं हो सकीं, इसका हमें खेद है। आगामी अङ्कोंमें उक्त रचनाएं शीघ्र ही यथावकाश प्रकाशित करनेका प्रयत्न किया जावेगा। परिस्थितिको समझकर विलम्बके लिए विद्वान् लेखक आशा है हमें क्षमा करेंगे और पूर्ववत् अपना सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

श्री पं० गोविन्दजी मिश्र, श्री पं० शक्तिप्रसादजी, श्री पं० देवकीनन्दनजी, श्री राजकुमार मोतीसिंहजी, श्री बा० हंसराजजी, श्री ला० शिवप्रसाद बांकेलालजी, श्री पं० कन्हैयालालजी, श्री सेठ सत्यनारायणजी गोयनका, श्रीसेठ हीरालालजी सूतवाले, श्रीसेठ धर्मचन्द्रजी खेमका, श्री कुंवर सुरेन्द्रदेवजी, श्री कविराज पं० मोहनलालजी भिषगाचार्य, श्री बा० रामरत्नजी, श्री पं० बैजनाथजी उपाध्याय, श्री पं० गङ्गाप्रसादजी ज्यो०, श्री पं० हरजसरायजी वैद्य तथा अन्य कई मित्रोंने 'श्रीस्वाध्याय' के प्रचारमें पूर्ण सहयोग दिया अतः इन मित्रोंके भी हम आभारी हैं।

जहाँ हम विद्वानों और श्रीमानोंका सहयोग चाहते हैं, वहाँ हमें सर्वसाधारण जनता (सामान्यग्राहकों) के सहयोगकी अत्यधिक अवश्यकताहै, अतः इस अवसर पर हम अपने प्रेमी पाठकोंसे साग्रह अनुरोध करेंगे कि वे अधिकसे अधिक ग्राहक बनानेका प्रयत्न करें।

जितने अधिक ग्राहक होंगे उतनी ही अधिक ठोस सेवा हम कर सकेंगे। सन्त कविकी—

बहुत निबल मिलि बल करैं, करैं जो चाहे सोय।
तिनकनकी रसरी करीं, 'करी' निबन्धन होय॥

इस सूक्तिके अनुसार छोटे-से-छोटे व्यक्तिका संगठित-सहयोग या प्रत्येक ग्राहकका वार्षिक मूल्य 'श्रीस्वाध्याय' के लिए बलदायक सिद्ध होकर राष्ट्रकल्याण का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

निवेदक—
हरदेवशर्मा त्रिवेदी (सम्पादक)

चतुर्थवर्षके ग्राहकोंको विशेष लाभ

'श्रीस्वाध्याय' के प्रेमी एक विशिष्ट-महानुभावने धर्मार्थ,काम-मोक्ष और इतिहासके आरम्भिक तत्त्वोंको समझने के लिए प्रथम वर्षके प्रथमाङ्ककी १०० प्रतियां अपनी ओरसे परोपकारार्थ बिना मूल्य वितरित करानेका सत्सङ्कल्प किया है। ये १०० प्रतियां उन्हीं सज्जनोंमें वितीर्ण की जावेंगी, जो कार्तिक कृष्णा १० ता० ११ अक्टूबर १९४४ के अनन्तर ३।-) का मनीआर्डर नीचे लिखे पते पर भेज कर 'श्रीस्वाध्याय' के चतुर्थवर्षके ग्राहक बनेंगे। इस प्रकार १०० ग्राहकों को १।) रु० मूल्यका यह अङ्क उक्त सज्जनकी ओरसे बिना मूल्य भेंट किया जावेगा। प्रेमी पाठक इस अवसरसे शीघ्र लाभ उठावें। १०० ग्राहकोंकी पूर्त्ति हो जाने पर फिर यह अङ्क बिना मूल्य किसीको भी नहीं भेजा जा सकेगा।

इस अङ्कमें 'श्रीस्वाध्याय' के संस्थापक श्री १०८ आचार्यचरणोंने पत्रके मुख्य पांच स्तम्भोंमें अपने आरम्भिक मार्मिक लेख लिख कर मोक्ष, धर्म, अर्थ, काम और इतिहासके रहस्यको भली-भांति समझाया है। 'ग्रहोंका चमत्कार और भारतवर्ष' 'ग्रहणोंका प्रभाव' 'श्रुतिसम्मत-राज्यपद्धति' 'संस्कृत-साहित्य और काश्मीरी पण्डित' आदि २ कई महत्त्वपूर्ण गम्भीर लेख भी इस अङ्कमें दिये गये हैं।

पता—व्यवस्थापक 'श्रीस्वाध्याय सदन, सोलन (शिमला)